CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिकधर्म

दिसम्बर १९७२

६० पैसे

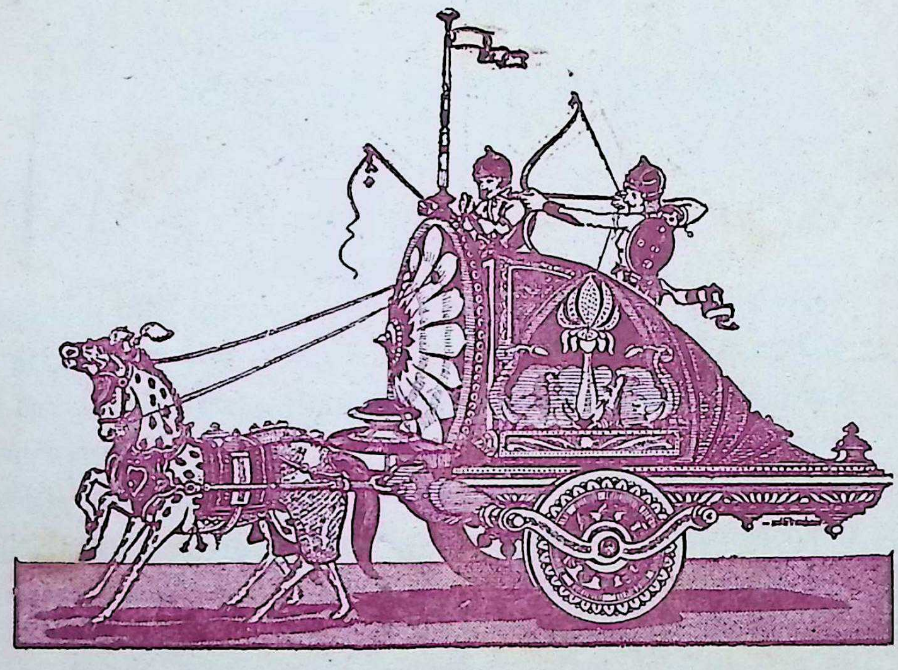

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

वर्ष ५३ : अंक १२ : मार्गशीर्ष : २०२९

स्वामी— स्वाध्याय-मंडल, पारडी [जि. बलसाड]

संस्थापक एवं आद्यसंपादक
श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

संपादक
वसंत श्रीपाद सातवलेकर

'हरि निवास'
(नेपाल)

विषयानुक्रमणिका

卐

एक आत्माके अनेक नाम	[वैदिक प्रार्थना]	१८३
वेदवाटिकाके कुछ सुमन	श्री प्रा. भद्रसेन	१८४
धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिका महामंत्र	श्री वेदपथिक पं. धर्मवीर आर्य झंडाधारी	१८७
वाणीकी महत्ता	इन्दिरा पाठक	१९०
पौराणिक भूगोलकी एक समीक्षा	डॉ. श्री ओ. एन. अग्रवाल	१९२
वैदिक वाङ्मयमें वर्ण व्यवस्थाका समन्वयात्मक स्वरूप	श्री शोभनाथ पाठक	१९४
योगसाधनकी तैयारी	श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर	१७ से २४
ऋग्वेदका सुबोध भाष्य	श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर	६५ से ८०

'वैदिक धर्म' वार्षिक मूल्य म. आ. से ६) रु.

वी. पी. से रु. ७.५०, विदेशके लिए रु. ८.०० डाक व्यय अलग रहेगा।

इस अंकमें प्रसिद्ध किये गये लेखकोंके लेखोंमेंके मतों और विचारोंसे संपादक सहमत है ऐसा नहीं है। उन लेखोंमेंके विचारोंके लिये केवल लेखकही व्यक्तिशः उत्तरदायी हैं।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो.- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चिर प्रतीक्षित] [छप गया

पण्डित सातवलेकर-जीवन-प्रदीप

मूल लेखक

श्री पु. पां. गोखले

अनुवादक

श्रुतिशील शर्मा

वेदमहर्षि पं. श्री. दा. सातवलेकरके जिस जीवनचरित्रकी प्रतीक्षा बहुत दिनोंसे की जा रही थी, वह अब छपकर तैय्यार हो गया है।

इस ग्रन्थमें उनके जीवनके हर पक्षको प्रस्तुत किया गया है। उपन्यासकी शैलीसे लिखा गया यह ग्रन्थ पठनीय और संग्रहणीय है।

उत्तम कागज, उत्तम छपाई, मुखपृष्ठ पर पण्डितजीका तीनरंगी आकर्षक चित्र, आकर्षक डेमी साइज, पृष्ठ– ३१५, मूल्य– १०)।

प्रतियां बहुत सीमित हैं। आज ही मंगा लें।

इस ग्रन्थ पर १५% कमीशन दिया जायेगा। आज ही अपना ऑर्डर भेजें।

स्वाध्याय मण्डल, पारडी
जि. बलसार
(गुजरात)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

एक आत्माके अनेक नाम

यद्गा॑यत्रे अधि॑ गाय॒त्रमाहि॑तं
त्रैष्टु॑भं वा॒ त्रैष्टु॑भान्निरत॑क्षत ।
यद्वा॒ जग॒ज्जग॒त्याहि॑तं प॒दं
य इत्तद्वि॒दुस्ते अ॑मृत॒त्वमा॑नशुः ॥

(अथर्व. ९-१०-१)

(यत्) जो (गायत्रे) गायत्रमें (गायत्रं अधि आहितं) गायत्र रखा है। और (त्रैष्टुभात् वा त्रैष्टुभं) त्रैष्टुभसे त्रैष्टुभकी (निरतक्षत) रचना की है, (यत् वा) अथवा जो (जगत् जगति आहितं) जगत् जगतिमें रखा है, (ये इत्) जो (तत् पदं विदुः) इस पदको जानते हैं (ते अमृतत्वं आनशुः) अमरत्वको प्राप्त करते हैं।

गायत्री, त्रिष्टुप् और जगति आदि छंदोंमें जो महत्त्वपूर्ण ज्ञान रखा है, उस ज्ञानको जो जानते हैं, वे अमृतत्वमोक्षको प्राप्त होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक : श्री प्रा. भद्रसेन

वेदवाटिकाके कुछ सुमन

वेद विश्वसाहित्यकी दृष्टिसे केवल प्राचीनतम पुस्तक ही नहीं है, अपितु भारतीय साहित्यके मूलस्रोत, भारतीय जनताके प्राण तथा उनके धर्म और, संस्कृतिके आत्मा है। भारतीय साहित्यके किसी भी विषयका कोई ग्रन्थ क्यों न हो, सभी एक स्वरसे वेदोंको सर्वोत्कृष्ट प्रतिष्ठित और प्रमाणित स्थान देते हैं। वेद जहां प्राचीनतम ग्रन्थ हैं, वहां पद्यमय काव्यके सभी लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। यह चाहे भाषाका स्वारस्य हो या छन्दोंकी विविधता, अलंकारोंकी स्वर्णिमय शोभा, रसोंकी सजीवता, विषयोंकी तथ्यपूर्णता-मौलिकता, भावोंकी अपूर्वता या प्रभावोत्पादकता। वेदोंमें जहां सरल-सरस शब्द चित्रण तथा भावगुम्फन मिलता है वहां दुरूह-शुष्क स्थल और गम्भीर दार्शनिक विवेचनके भी दर्शन होते हैं। आजकल विविध विषयोंके ग्रन्थोंको साहित्यके नामसे भी स्मरण करते हैं, जिसके दो अभिप्राय लिए जाते हैं। पहला है शब्द और अर्थ (वागर्थाविव संपृक्तौ-रघुवंश १,१) का उसमें दोष रहित (अदोषौ शब्दार्थौ) होना और दूसरा है हितकारक बातका वर्णन (हितेन सह वर्तते)। वेदोंमें जहां स्थान स्थानपर दोष रहित शब्द-अर्थका सुन्दर सामञ्जस्य प्राप्त होता है, वहां मानवजीवनके कल्याणके मार्गका जैसा अनूठा सार्वभौमिक, सार्वकालिक और विश्वजनीन विश्लेषण यहां मिलता है, उसका दूसरा उदाहरण मिलना सर्वथा दुर्लभ है। (सर्वस्य लोचनं शास्त्रम्) किसी विषयका यथार्थ दर्शन करानेसे शास्त्र सबकी आंख है के अनुसार वेद बिना लाग-लपेट, शब्दाडम्बर, वाक्चातुर्य या वैदुष्य अभिव्यक्तिके विविध विषयों और तत्त्वोंका यथार्थ तात्त्विक वर्णन करता है।

भारतीय साहित्य और भावनाके अनुसार वेद ईश्वरीय ज्ञान है, जो कि परमेश्वरने सृष्टिके प्रारम्भमें जल, वायु, पृथिवीकी तरह मनुष्योंके कल्याणके लिए ऋषियोंके हृदयमें प्रकाशित किए। जिससे मानव अपने और संसारके सम्बन्धमें यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सके। ये ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें लगभग बीस हजार मन्त्र हैं, जिनमें अग्नि, इन्द्र, वरुण, विष्णु, सोम आदिको केन्द्रबिन्दु, शीर्षक बनाकर वर्णन किया गया है। जिसको देवता-मन्त्रका प्रतिपाद्य, वर्ण्य विषय कहते हैं। मन्त्रोंके वर्णनोंसे ये देवता वाचक शब्द कहीं प्राकृतिक तत्त्व प्रतीत होते हैं तो कहीं किसी गुण या शक्तिके रूपमें झलकते हैं। कहीं व्यवहारमें आनेवाली वस्तु या व्यक्तिके वाचक होकर आते हैं तो कहीं इन नामोंसे इष्टदेवकी स्तुति की गई है। क्योंकि वेदोंके शब्द यौगिक एवं योगरूढ हैं, जिनका अर्थ प्रकृति-प्रत्ययके आधार पर होता है। एक ही (जैसे प्रकृति-प्रत्ययवाला) शब्द प्रकरणके अनुसार भिन्न भिन्न अर्थोंको व्यक्त करता है। तभी तो एक स्थलपर विशेषण रूपमें आया हुआ शब्द अन्य स्थलपर विशेष्यके रूपमें प्राप्त होता है। वेदोंकी भाषा-देववाणी अर्थात् वैदिक संस्कृत है, जो कि लौकिक संस्कृतसे कई अंशोंमें भिन्न है। यहां संस्कृत शब्दका अर्थ प्रकृति-प्रत्ययके संस्करण, परिमार्जनसे बनी हुई भाषासे है।

ये चारों वेद ही विविध क्षेत्रीय भारतीय साहित्यके मूल स्रोत हैं। जिनसे समस्त भारतीय और विशेषतः संस्कृत वाङ्मयका विशाल वटवृक्ष पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ है। इसलिए ही मनुस्मृतिमें कहा है- 'वेदश्चक्षुः सनातनम् १२,९४' = वेद सदासे आनेवाला चक्षु (वस्तुओंके यथार्थ ज्ञानका साधन) है तथा 'सर्वं वेदात्प्रसिध्यति १२,९७ = विविध ज्ञानोंका विकास वेदसे होता है, क्योंकि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेद 'सर्वज्ञानमयो हि सः २,७' सब ज्ञानोंसे पूर्ण है 'तस्मादेतत्परम मन्ये यज्ञन्तोरस्य साधनम् १२,९९' इसी लिए ही मानवके कल्याणके लिए यह परम सहायक है। वेदके बाह्य स्वरूपके संरक्षण और आन्तरिक भावों एवं अर्थोंके ज्ञानके लिए ही वैदिक साहित्यका प्रादुर्भाव हुआ है।

वेदोंकी सार्वभौमिक, सार्वकालिक और विश्वजनीन शिक्षाओंको देखकर विद्वानोंने अपने श्रद्धामय भाव समर्पण करते हुए, इनको अनेकों उपमाओंसे उपमित करनेका प्रयास किया है। इनमेंसे वेदोद्यान, वेदवाटिका शब्दका प्रयोग रोजमर्राके व्यावहारिक जीवनके अधिक निकट है। उद्यानमें जहां अनेक वर्णों (रंगों) में वर्णित, चित्र - विचित्र आकृतियोंसे युक्त, शतशः सुरभियोंसे सुरभित पुष्प नेत्रों और नासिकाको आप्लावित, सुवासित करते हैं, वहां वह सैंकडों तरहके पुष्टिकारक, अनेक प्रकारके स्वादों—आकारों—रंगों—गुणोंसे भरपूर फलोंसे सुसज्जित होता है। ठीक इसी प्रकार वेदोद्यान भी अनेक विध फूलों (विचारों) और फलों (आचारों) से शोभायमान है। आवश्यकता है केवल इस अनोखे वेदोद्यानमें प्रविष्ट होकर समिधामय मनसे सुवासित और आप्लावित होनेकी। पुनः देखिए इस उद्यानमें जीवन (विचार और आचारात्मक) कैसे हर्षित, सुवासित और पुष्टिमय होकर कृतकृत्य हो जाता है। स्थालीपाक न्यायसे कुछ पुष्पों और फलोंका मानसिक स्वाद लेकर जीवनकी सजीवताका अनुभव कीजिए।

अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा मानवयोनि बुद्धि, शरीर और विकासकी दृष्टिसे सर्वोत्कृष्ट है। अतः एव उसको पुरुष शब्दसे पुकारा जाता है, क्योंकि वह अपना विकास करके विविध क्षेत्रोंमें अपने आपको बहुत कुछ पूर्ण कर सकता है। और प्रत्येक मानवमें अपने आपको हर प्रकारसे पूर्ण करने (प्रगति) की स्वाभाविक इच्छा पाई जाती है। तभी तो वेदने कहा है—'उत्थानं ते पुरुष नावयानम् अथर्व. ८,१,६' पुरुषकी पूर्णता उत्थान प्रगतिमें ही है, न कि पतन, अवगतिमें। इसी भावको दूसरे शब्दोंमें व्यक्त करते हुए कहा है—'आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम् अ. ५,३०,७' जीवका जीवन (जीवपन) उन्नति करने और आगे बढनेमें है अर्थात् आगे बढना ही जीवन है और रुकना मृत्यु।

प्रत्येक प्रकारकी सफलता, पूर्णता, प्रगति-परिश्रमसे ही प्राप्त होती है, जैसे कि संस्कृतके एक कविने कहा है—'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी' = हर प्रकारकी शोभा, सम्पत्ति, सफलता परिश्रमी पुरुषको ही प्राप्त होती है। तभी तो वेद स्थान स्थानपर उत्साहित करते हुए कहता है—'प्रेता जयता नरः ऋ; यजु. १७,४६' मनुष्यो! आगे बढो और सफलता पाओ अर्थात् आगे बढनेसे ही सफलता मिलती है। अपने अपने क्षेत्रके अनुसार ढंगसे आगे बढना ही पुरुषार्थ, परिश्रम या उद्योग है और इसीमें सफलता प्राप्तिका रहस्य ओत-प्रोत है। पुरुषकी हर प्रकारकी पूर्णता, प्रगतिका प्रमुख आधार होनेसे ही परिश्रमको पुरुषार्थके नामसे स्मरण करते हैं। इसीकी महिमाको बताते हुए वेदने कहा है—'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः' = जब परिश्रम मेरे दहिने हाथमें होता है तो विजय बाएं हाथमें स्वतः सुशोभित होती है अर्थात् यदि दक्षता (ढंग) से परिश्रम किया जाए तो सफलता स्वतः बायें हाथकी तरह सरलतासे मिल जाती है। अतःएव वेद पुरुषार्थके लिए प्रेरित करता हुआ कहता है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥
(यजु. ४०,२)

पुरुषार्थ करते हुए ही मनुष्यको सौ वर्ष (पूर्ण आयु) जीना ही नहीं अपितु जीनेकी इच्छा भी कर्म करते हुए ही करनी चाहिए। जीवनकी प्रगतिका और कोई मार्ग नहीं है और कर्म करनेसे कर्ता उसमें उलझता नहीं है, क्योंकि कर्म केवल बाधन्ता ही नहीं, वह तो अमरपद भी दिलवाता है। अर्थात् कर्मयोगीको अपने हृदयसे यह भय निकाल देना चाहिए कि मैं करनेसे कीचडकी तरह उनमें अधिकसे अधिक उलझता चला जाऊंगा।

यो जागार तमृचः कामयन्ते,
यो जागार तुम सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह,
तवाहमस्मि सख्ये न्योकः॥

सदा सावधान होकर जो परिश्रम करता है, उसे ही उस कार्य सम्बन्धी ज्ञान, अनुभव प्राप्त होता है और कार्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करनेवाले ही ज्ञानके क्रियात्मक रूप, कार्यकी क्रियाविधिको प्राप्त करते हैं। कार्योंके सुपरिणाम, फल या संसारके भोग्य-पदार्थ 'हम तुम्हारे हैं, हम आपके पुरुषार्थके फल हैं' कहते हुए खुशीसे उसकी सेवामें उपस्थित होते हैं। क्योंकि 'भूत्यै जागरणम्- अभूत्यै स्वप्नम् यजु. ३०,१७' सजगता, जागरूकता, उद्योग- अमीरी और आलस्य, लापरवाही, तन्द्रा-गरीबी, कंगालीका ही मूल है। इसी भावको लौकिक कवियोंने इन शब्दोंमें स्मरण किया है- 'प्रमादो मृत्योः पदम् (पमादो मच्चुनो पदम्)' आलस्य-मौत, असफलता, हारकी निशानी, जड है अथवा 'आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः' = शरीरधारियोंका आलस्य [पुरुषार्थ न करना] ही सबसे बडा शत्रु है।

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादं अतन्द्राः ॥ (ऋ. ८।२।१८)

संसारको सुख-समृद्धियां, दिव्यतायें उसीको चाहती हैं, जो की परिश्रमी हैं। वे सोनेवालों, ख्याली पुलाव पकानेवालों, केवल सोचनेवालों परन्तु तदनुसार कर्म न करनेवालोंका मुख भी नहीं देखतीं। पुरुषार्थी ही प्रसन्नता, सन्तोष और समृद्धिको पाते हैं। क्यों कि—

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः। (ऋ. ४,३३,११)

देव (विद्वान् प्राकृतिक तत्त्व, दिव्यतायें) परिश्रमीके सिवाय किसीके भी मित्र नहीं बनते। और "इन्द्र इच्चरतः सखा" ऐश्वर्योंका स्वामी प्रभु भी मेहनतीका ही सहायक है। God helps those, who help them selves. सभी उसीके सहायक बनते हैं, जो अपनी सहायता या अपना कार्य करते हैं। वेदने जहां पग पगपर बडे उत्साह भरे शब्दोंमें जीवनकी सफलताके मूल मन्त्र पुरुषार्थके लिए प्रेरणा दी है, वहां कर्महीनोंको डाकू [अकर्मा दस्युः] कहा है, क्योंकि वे सामर्थ्य रखते हुए भी बिना कुछ किए संसारके भोगोंको भोगते हैं, दूसरोंकी कमाईपर जीते हैं। वेद द्वारा यत्र-तत्र दी जानेवाली पुरुषार्थकी प्रेरणाके रहस्यको स्पष्ट करते हुए ब्राह्मणकारने क्या ही सुन्दर कहा है—

चरन्वै मधु विन्दति, चरैवेति चरैवेति।
आस्ते भग आसीनस्य, ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः ॥

जीवनका मधु (आनन्द) पुरुषार्थीको ही मिलता है, अतः चलते चलो चलते रहो, चलते रहने (परिश्रम करने) का नाम ही जीवन है। जो (जीवनमार्गपर) चलता रहता है, उसका भाग्य उठ खडा होता है। जो बैठ जाता है, उसका भाग्य भी बैठ जाता है। आलस्यमें पडे रहने-वालेका नसीब सदाके लिए सो जाता है।

उपरि निर्दिष्ट विवेचनसे स्पष्ट है कि वेदोद्यान मानव-समाजके कल्याण, विकास और समृद्धिके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अतः वेदोद्यानके स्थान, स्थिति, संयोजन, रूप, तत्त्व, पुष्प, फल, पादप, वृक्ष, वनस्पति, औषधि और वायुमण्डल आदि विविध पहलुओंको आजके विज्ञापनके युगमें पत्र-पत्रिकाके माध्यमसे पहुंचानेकी अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि पत्र-पत्रिकाओंका माध्यम सरल, सक्षम और शीघ्रव्यापी है और वह एकदम हजारों हाथोंमें पहुंच जाता है। इस प्रकारके विचारोंके प्रसारसे ही वेदके अनुसार 'अस्मिन् ग्रामे विश्वमस्तु-अनातुरम्' यह सारा विश्व रोग-शोक-भय-दुःख और बेचैनीसे बच सकता है तथा स्वस्थ, सुखी हो सकता है। क्योंकि सुलझे हुए विचार ही सुलझे हुए आचारके आधार होते हैं। जो जैसे विचारोंमें विचारता है, उसका वैसा ही जीवनव्यवहार होता है। सुलझे हुए विचारोंका वेद एक अनुपम कोष है। अतः सुलझे हुए विचारोंके प्रसारके लिए वेदकी अनुपम शिक्षाओंका पत्र-पत्रिकाओंके माध्यमसे प्रचार करना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक : वेदपथिक पं० धर्मवीर आर्य झंडाधारी

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिका महामंत्र

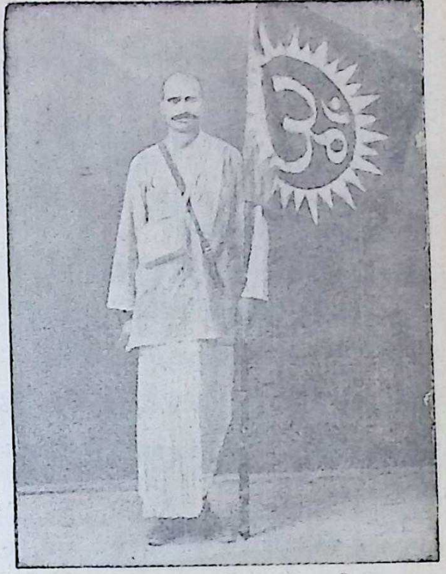

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सुखोंकी सिद्धि ही मानव जीवनका अंतिम लक्ष है।

वह मनुष्य, मनुष्य कहलानेंका अधिकारी कदापि नहीं है जिन्हें जीवनके अंतिम हर्षनादका ज्ञान नहीं है।

यह याद रहे ज्ञानामृतके पान बिना परमात्माके साक्षात्कारके बिना, योग, तप, स्वाध्याय, सत्संग, विवेक, वैराग्य, अनुराग, आत्मदर्शनके बिना मानव दैवी संपदाका अधिकारी कदापि बन पाता नहीं है।

इस विशाल विश्वमें वेद ज्ञानकी अपरिमित ज्योतिके प्रकाश पुंजको प्राप्त किये बिना मानव और दानवमें लेशमात्र भी अन्तर नहीं है।

विश्वकी विषमताको बिनष्ट करनेके लिये, वैदिक जीवनके निर्माणके लिये, वैदिक स्वराज्यके स्थापनार्थ घोर तप करना होगा।

मानव दैवी गुणोंको ग्रहण करके देव संज्ञाका अधिकारी बन सकता है।

प्रत्येक मानवको यह जानना परम आवश्यक है कि मैं कौन हूं ?

मैं कहांसे आया हूं ?

मुझे जाना कहां है ?

जीवनकी मंजिल कहां है ?

पारब्रह्म परमात्माका और जीव आत्माका संबंध क्या है ?

आज यह घोषणा करो कि हम अमर आत्मा हैं !

हम अजर, अमर, अक्षय हैं ?

हम नस नाडियोंके बन्धनोंसे मुक्त हैं ?

हम मुक्तात्म हैं ?

इस जीवनमें हम पाप तापोंसे बचकर प्रतिपल मोक्ष अवस्थामें विचरण करेगें। इस विश्वके कण कणमें हम परमात्माकी सत्ताकी महत्ताका दर्शन करने लग गये हैं।

विश्व बन्धुत्वकी भव्य भावनाओंसे जीवन सदनको ओत प्रोत बना लो। यह याद रहे काम, क्रोध, लोभ, मोह जैसे महा शत्रुओंपर विजय प्राप्त किये बिना हम दिग्विजय कर न सकेगें।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिके साधकोंको जीवन संग्राममें प्रतिपल परमात्मापर अटल, अटूट, अविचल, श्रद्धा और विश्वास रखना चाहिये। सुखमें, दुःखमें, संपत्तिमें विपत्तिमें, जीवन और मृत्युकी प्रश्न पहेलियोंमें।

काली अंधेरी रात्रिमें, एकान्तमें दिनकरकी किरणोंके प्रबल प्रकाशमें परमात्माकी लीलाओंका अवलोकन इस संसारकी प्रत्येक वस्तुमें करो।

परमात्माका अमृतपुत्र बनकर परमात्मासे वार्तालाप करना सीखो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परमात्माको अपनें अंगसंग अनुभव करो। ब्रह्मतेजको प्राप्त करो।

अपने जीवनको आशा और पुरुषार्थके पावन परागसे भर दो।

अवश्य उत्साहके धनी बनों।

अरबों वर्षोंके शाश्वत शब्दोंको हृदय आकाशमें समाधि अवस्थामें समाहित होकर सुननेंका अभ्यास भी अवश्य करो।

मोक्ष अवस्थामें विचरण

मोक्ष अवस्थामें विचरण करनेका अपना हित हर्षक, मृदुतर, अनुपम, अलौकिक, अद्भुत, सरल, सलिल, स्वभाव बना लो।

यह याद रहे यदि इस जीवनमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सुखोंकी सिद्धियोंसे समृद्ध न हो सकोगे तो पुनः चौरासी लाख योनियोंके दारुण दुःखोंमें भटकना पडेगा। यह याद रहे इस जीवनके एक क्षणके समयको भी व्यर्थके कार्योंमें मत नष्ट करो। सात्विक, सुन्दर, दिव संकल्पयुक्त अपने विचारोंको बना लो। अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करो।

सद्गुणोंसे अपने आपको आजके पावनप्रभातमें अलंकृत करो।

हृदय आकाश

हृदय आकाशके पावनप्रकाशसे प्रकाशित हो उठो। हृदय आकाशमें सहस्त्रों सूर्य सम अतुलित अकल्पनीय ज्योतिका प्रकाश पुंज है, उस ज्योतिकी तुलना इस सूर्य, चन्द्र तारोंसे नहीं की जा सकती है।

हृदय आकाशके प्रकाश सिन्धुसे ज्ञान रविको प्राप्त कर जीवन छविको एक बार दृष्टि पथमें लाओ। कुवासनाओंसे कह दो कि अब तुम भाग चलो। अपनी आखोंमें, मन भवनमें पवित्रता लाओ। योगकी सिद्धियोंसे समृद्ध बनों। पापकी अभिशापसे बचो।

जीवन पथ

जीवन पथकी पथ रेखाके सुमन बनों, जीवन पथको भूल न जाओ।

विषयवासनाओंके दल दलमें फंसकर अपनें शुद्ध स्वरूपको ही न भूल जावो।

अपने निज मानव जीवनके गुणोंके विकाशमें ही निमग्न रहना सीखो।

तुम युग पुरुष बनों।

विश्वके मानवसमाजका पथ प्रदर्शक बनों। विश्वकी मानवताका संरक्षक बनों।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धियोंसे समृद्ध होकर पुनः अपना चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्य स्थापित करो।

धर्मवीर बनकर पावन पथके दुनियांको यह बतला दो कि हम वेदोक्त जीवनका निर्माण करेगें।

मोक्ष अवस्थाके आनन्दकी अलौकिक अनुभूति

मोक्ष अवस्थाको इस जीवनमें प्राप्त कर लेनेपर यत्रतत्र सर्वत्र आनन्द उल्लासकी लहरें प्रवाहित होने लग जाती हैं। समाधि अवस्थाका आनन्द साधकको प्राप्त होनें लग जाता है।

परमात्माकी भक्तिमें साधक तन्मय हो जाता है। भगवान्‌की भक्तिका प्रसाद प्राप्त कर मानव निहाल हो जाता है।

बेखुदी भक्तके रोम रोममें छा जाती है। अनेक जन्मोंके पाप, ताप भस्मसात हो जाते हैं। जीवनमें अपार शक्तिकी अमृतधारा बह जाती है। मोक्ष अवस्थाके प्राप्त हो जानेपर संसारके बडेसे बडे प्रलोभनोंको त्याग देना सर्वथा सरल हो जाता है।

मोक्ष अवस्थामें विचरण करनेका स्वभाव बना लेनेपर दैवी प्रेरणायें प्राप्त होने लग जाती हैं।

लोक उपकारकी प्रवृति बन जाती है।

महान् अगम्य असंभव कार्योंको भी भक्तजन कर देते हैं।

जिस कार्यको करोडों जनसमूह नहीं कह पाते हैं उस कार्यको भगवान्‌का सबल प्राप्त कर भगवान्‌के भक्तजन अकेले ही कर देते हैं।

ऐ मनुष्य उठ जागो आलस्यको त्यागो।

ज्ञान, विवेक, वैराग्यसे अपने आपको पवित्र बना लो।

यह याद रहे यज्ञमय जीवनके निर्माणके बिना सात्विक आहारके बिना मोक्षकी सिद्धि प्राप्त न कर सकोगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जीवनको समुन्नत बनानेके आवश्यक नियम

१ मनोनिग्रह करो मनमें विकारोंको एक क्षणके लिए भी मत आने दो।

२ गायत्री महामंत्रका अथवा ओ३म् नामका जप कमसे कम अडिग समाधि लगाकर प्रातःकाल ४ बजे किया करो।

३ ब्रह्मचर्यव्रतका पालन गृहस्थी, वानप्रस्थी, सन्यासी, ब्रह्मचारी सभीके लिये परम आवश्यक है।

४ संध्या, हवन, प्रार्थना, स्वाध्याय नित्य करो।

५ अन्डे, मांस, शराब, गंजा, भंग, सिग्रेट, तंबाकू, बीडी आदि मादक पदार्थोंसे अपने आपको कालके समान बचाओ।

६ स्वस्थ रहनेके लिए आसन, व्यायाम, प्रोणायाम प्रतिदिन करो।

७ स्नान करते समय तेल मालिस करो।

८ उत्तम ग्रन्थोका ही स्वाध्याय करो चित्तवृत्तियोंका विनाश करनेवाले साहित्यको हलाहल समझकर त्याग दो।

९ सिनेमा सर्वनाशका अखाडा है अतः कदापि मत देखो।

१० पराई स्त्रियोंको माता बहिन और पुत्रिको भद्र भावनासे देखो।

११ प्रात.काल ३॥ बजे अथवा ४ बजे उठकर नित्य कृपाओंसे निवृत्त होकर वैदिक कर्मकाण्डोंको अवश्य करो।

१२ भूखके विना कोई खाद्य पदार्थ मत खाओ।

१३ लोभही अवगुण है, दुष्टता ही पाप है, सत्य ही तप है, ऐसा मन जानिये पाप जहाँ रहता संतापका निवास वहीं धर्मवीर जान निज कर्तब निर्धारिये।

१४ महर्षियों, युगपुरुषों, महात्माओं और वीरो धर्मवीरोंके जीवनचरित्रोंको अवश्य पढो।

१५ तुम महापुरुष बनों, युगपुरुष बनो, युगधाराको बदलकर विश्वकी धरतीपर अमृतधारा बहा दो।

१६ वसुधाको वेदसुधाका दान देनेका महाव्रत धारण करो।

१७ विघ्न, बाधाओंकी तनीक भी परवाह न करते हुए मृत्युको ललकारकर जीवन पथमें प्रतिपल आगे बढो।

१८ यह ध्यान रहे वह मंजिल दुर नहीं है जब हम वैदिक युगका निर्माण करेंगे।

१९ यह याद रहे आत्माउन्नतिके विना मानव महान् आत्मा बनता नहीं है। आत्मउन्नतिको प्राप्त कर अमर बनो यह अमर आत्मका सिंघनाद है।

२० अपनी पवित्र कमाईमेंसे पवित्र शुभ कार्योंके लिए दान करते रहो। दान देनेमें आनन्दकी अनुपम अनुभूति होती है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिसे समृद्ध होना। परमात्माको प्राप्त कर लेना यह अपने जीवनका महामंत्र बना लो। आजके पावनप्रभातमें वेदोंका संदेश यह सुनो अपने आपको पहचानो। जीवनको सार्थक बनाओ धर्मवीर बनों, कर्मवीर बनो, युगवीग बनो।

युगधाराके प्रबल प्रवाहको मोड दो।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धियोंसे समृद्ध बनो इसी जीवनमें यह वेद भगवान्‌का विश्वके मानवसमाजके नाम पावनसंदेश है।

दिपावली विशेष अंकोंकी पहुंच

मध्यप्रदेश संदेश— (हिन्दी) संचालक, श्री. हनुमान प्रसाद तिवारी. संपादक श्री. रघुवीरसेवक दीक्षित. जयाजीचौक, लश्कर (ग्वाल्हेर)

नवनीत— (हिन्दी) संपादक श्री. नारायण दत्त नवनीत प्रकाशन लि., ३४१ ताडदेव मुंबई ३४

जाह्नवी— (हिन्दी) संपादक श्री. भारतभूषण चड्डा जाह्नवी, मंदिर झंडेवाला नवी दिल्ली ५५ रु. २

विश्वहिन्दू परिषध— (हिन्दुविश्व) संपादक श्री. नारायणराव तर्टे विश्वहिन्दू परिषध १६।१०, आर्यसमाजमार्ग करोलबाग, नवीदिल्ली ५ मूल्य १ रु.

गोधन— (हिन्दी) संपादक श्री. विश्वंभर प्रसाद शर्मा सदर पावारोड, दिल्ली – ६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक : इन्दिरा पाठक

वाणीकी महत्ता

मनुष्य कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंका पुतला है। सभी इन्द्रियोंका स्थान अपने क्षेत्रमें अग्रगण्य तो है ही पर वाणीका स्थान कुछ ऐसा है कि 'मधुर वाणी' से मनुष्य क्या नहीं प्राप्त कर सकता और कटुवाणीसे 'किस अधोगति' तक नहीं पहुंच सकता, नहीं कहा जा सकता। अर्थात् मधुर वाणीके प्रयोगसे अपार आनन्द उमड पडता है तो कटुवाणीसे अपार कष्ट। तब मृदु वाणीका ही प्रयोग क्यों न करें। जिसके आलोकसे सारा संसार आलोकित हो जाय। क्योंकि महर्षि याज्ञवल्कने कहा है– 'वागेवास्य ज्योतिर्भवतीति' वाकका सामान्य अर्थ है मानव मुखसे निःसृत ध्वनि जिसे हम श्रवणेन्द्रियोंसे ग्रहण करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक प्राणीकी वाणी उसके मुखसे निकल सुख दुःखका समयानुसार प्रसार करती है। यदि ईसा बुद्ध गांधीकी वाणीने उन्हें ईश्वरतत्व तक पहुंचाया तो द्रोपतीकी वाणीसे जला भुना दुर्योधन महाभारतके युद्धपर उतारु हुआ। सांसारिक उथल पुथलमें वाणीकी ही वरीयत रही है।

वैदिक वाङ्मयमें तो वाणीकी वरीयताका खूब बखान किया गया है। इसका एक उदाहरण अंतसमें सजोइये और फिर देखिये।

जिह्वया अग्रे मधुमें जिह्वा मूले मधुलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि।
मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्ये परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूमासंमधुसदृशाम्॥
(अथर्व० १।३४)

मेरी जीभके अग्र भागमें मधुरता हो, मूलमें मधुरता हो, और मेरे व्यवहारमें मधुरता हो। मैं वाणीसे मीठा भाषण करती हूं जिससे मधुरताकी मूर्ति बनूं। क्योंकि इस रूपका निखार केवल मधुर वाणीपर ही निर्भर है जैसा कि कहा गया है।

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥

अर्थात् केयूर (बाजूबन्द) व चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हार पहननेसे शरीरकी सुन्दरता नहीं बढती, खूब स्नान, चन्दनका लेप, और फूलोंसे बालोंको सजानेपर भी मनुष्यकी सुन्दरता नहीं बढती, हां सुन्दरता तो केवल वाणीकी मधुरतासे ही बढती है या सुसंस्कारोंसे। सभी अलंकारोंकी छबि क्षीण हो जाती है जब कि वाणीकी अलंकृत माधुर्य नित्य प्रति निखरता आता है। अरे मनुष्य तो सृष्टिका सर्वोत्तम प्राणी है जब काले कौवे और कोयलकी महत्ता भी वाणीकी मधुरतासे निखर आती है। यथा—

कागा काको धन हरै कोयल काको देय।
मीठे वचन सुनाय के यश अपना कर लेय॥

मीठे वचनोंसे भला कौन नही मुग्ध हो जायेगा। मीठी जबान सफलताकी कुंजी है तभी तो छान्दोग्य उपनिषद्में कहा गया है। "समस्त भूतोंका रस पृथ्वी है। पृथ्वीका रस जल है, जलका रस औषधियां है और औषधियोंका रस पुरुष है और पुरुषका रस वाणी है। इसी वाणीके विषयमें प्रार्थना की गई है वेदकी ऋचामें 'ओरुम वाक् वाक्' अर्थात् हे प्रभो हमारी वाणीमें शक्ति दीजिये। वह वाणी जो महा कवि तुलसीके शब्दोंमें—'

तुलसी मीठे वचनसे सुख उपजत चहुं ओर।
वशीकरण एक मंत्र है तज दे वचन कठोर॥

अरे मनुष्य अब तो चेत, तुम्हारे पास ऐसी शक्ति है जो सर्वत्र आह्लाद बिखेर सबको अपने वशमें कर सकती है और वह साधन है वाणीकी मधुरता। फिर क्यों तू चूकता है। कठोर वचनोंको त्यागकर मधुर वचन बोलो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अरे... 'वचनेका दरिद्रता'। संसारमें आये हो तो सबसे प्रेम-स्नेह श्रद्धाका बर्ताव करें। इसीमें तो मानवताका उत्कर्ष है तब फिर—

ऐसी वाणी बोलिए, मनका आपा खोय।
अपना तन शीतल करै, औरनको सुख होय॥

मधुर वाणीसे दूसरे तो आनंदित होते ही हैं पर स्वयंको भी अपार सुख मिलता है। हमेशा मृदुभाषी प्रसन्न ही रहता है। औरोंको भी प्रसन्न रखता है। प्राय: यह देखनेमें आता है कि जो चिडचिडे होते हैं वे बहुत कमजोर नजर आते हैं। यदि सभी दु:खोंका मूल ही कटु वाणीको कहा जाय तो कोई अत्युचित नही।

ईश्वरका कैसा विधान है कि उन्होंने भी वाणी (जबान) को मधुरता उडेलनेके दृष्टिकोणसे ही तो यूं किया है।

'अल्लाको नापसंद थी सख्ती जबानमें।
इससे नहीं बनाये वे हड्डी जबानमें॥

इस प्रकार जिह्वाकी बनावटके आधारपर भी हमें मृदु शब्दोंका ही प्रयोग करना चाहिये। ऐसे शब्दोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये, जिससे हमेशा चिकचिक होती रहे। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो ऐसे कटु शब्द बोलते हैं जो सहा नहीं जा सकता। आजके अभावोंवाले युगमें जहां ऊपरी चमक दमक काफी है पर आन्तरिक अशांतिसे मनुष्य आकुल है। वहां मृदु वाणीका लेप ही तृप्तिदायक होती है। पारिवारिक कलह भी जबानसे ही पनपती है जो सभी प्रकोपोंकी जड है।

अतः सुख शांति व समृद्धिके लिये हमेशा मृदु वाणीका ही प्रयोग करनी चाहिये।

वाग्वै मनसो हसीयसी। (शतपथ ब्राह्मण १।४।५।७)

यहि नहीं वरन् वाणीपर ही सभी विकास अवलंबित हैं।

वाग्वै सर्वान कामान दुहे। (अ. ऐतरेय आरण्यक)

तथा:—

वाचः सत्यमशीय। (यजु. ३९।४)

अर्थात् मैं अपनी वाणीमें सत्यको प्राप्त करूं।

यदि आप जानना चाहते हैं कि—
(१) प्राचीन भारतकी राज्यव्यवस्था कैसी थी?
(२) उस समयकी समाजव्यवस्था कैसी थी?
(३) उस समयकी अर्थव्यवस्था कैसी थी?
तो अवश्य पढिये—
यदि आप राजनीतिज्ञ हैं, तो "राज्यव्यवस्था" का अध्ययन आपको अवश्य करना चाहिए।
यदि आप समाजसुधारक हैं तो "समाजव्यवस्था" आपको अवश्य देखनी चाहिए।
यदि आप अर्थशास्त्री हैं तो "अर्थव्यवस्था" पर अपनी नजर अवश्य रखनी पडेगी।
और यदि आप अधिकारी हैं तो "प्रजाव्यवस्था" पर आपको ध्यान रखना पडेगा।
पर ये समस्यायें अब आपके लिए समस्यायें ही नहीं रह गईं हैं। क्योंकि इन सबका समाधान आपको—
चाणक्य सूत्राणि
में मिल सकता है। सुप्रसिद्ध टीकाकार श्री रामावतारजी विद्याभास्कर की सुबोध एवं सरल हिन्दी टीकाए ६९० पृष्ठसंख्यावाले इस महान् और अमूल्य ग्रंथकी कीमत सिर्फ १८) (डा. व्य. पृथक्) है। शीघ्रता कीजिसे आज ही मंगवाए।
मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)', पारडी [जि. बलसार]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक : डॉ. श्री ओ. एन. अग्रवाल

पौराणिक भूगोलकी एक समीक्षा

पिछले अंकमें पुराणोंमें उल्लिखित सप्त समुद्रोंके वर्तमान स्वरूपपर विचार किया गया था तथा उन समुद्रोंके प्राचीन नामकरणकी वास्तविकतापर प्रकाश डाला गया था। अब प्राचीन द्वीपोंके वर्तमान स्वरूप तथा उन द्वीपोंके नामकरणकी समस्या रह जाती है जो इस लेखमें प्रस्तुत की जा रही है। प्राचीन सात समुद्रों एवं सात द्वीपोंका सम्बंध बडा ही अटूट है तथा उनके वर्णनमें बडी ही तादात्म्यता है। इन द्वीपों एवं समुद्रोंका वर्णन एक दूसरेसे अभिन्न हैं। एकका वर्णन दूसरेके लिये पर्याप्त है। समुद्रोंकी समस्या हल हो जानेपर द्वीपोंके विषयमें जानकारी स्वयं प्रस्तुत हो जाती है फिर भी सप्त द्वीपोंपर विचार करना अनिवार्य है। पुराणोंमें सप्त द्वीपोंका उल्लेख किया गया है जिनका नामकरण इस प्रकार था— जम्बू द्वीप, शाक द्वीप, प्लाक्ष द्वीप, क्रौञ्च द्वीप, कुश द्वीप, शाल्मलि द्वीप, पुष्कर द्वीप।

१ जम्बू द्वीप— यह द्वीप बडा ही प्रसिद्ध द्वीप रहा है इसका वर्णन प्रायः सभी धार्मिक ग्रंथोंमें पाया जाता है और इस द्वीपके विस्तारके सम्बन्धमें समय समयपर विद्वान् प्रकाश डालते रहे। अनुश्रुतिके अनुसार प्राचीन समयमें राजपूतानेके मरुस्थलमें सागर बहता था, जो टैथिस सागर कहलाता था जिसका जल अधिक खारा था और वह स्वादमें नमक जैसा ही था। भौगोलिक परिवर्तनके अनुसार उस सागरकी स्थिति समाप्त हो गई और अब वह केवल एक झीलके रूपमें विद्यमान है जिसे सांभर झील कहते हैं। प्राचीन समयमें जम्बू द्वीप सुमेरुका दक्षिणी प्रदेश कहलाता था। सुमेरु पामीरके पठारको कहते हैं और उसके दक्षिणमें जम्बू वर्तमान जम्मू-काश्मीरसे विदेशयात्री तथा अन्य परिचित होनेके कारण इस भूभागका नाम जम्बू द्वीप रखा गया। जम्बू द्वीपके नामकरणके सम्बंधमें प्रसिद्धि है कि जम्बूमें एक जामुनके पेडसे एक नदीका उद्गम हुआ है जो कि जम्बू नदी कहलाती है और उसी कारण उस स्थानका नाम जम्बू नगर तथा धीरे धीरे जम्बू प्रांत एवं कालांतरमें जम्बू द्वीपसे प्रसिद्ध हो गया।

२ शाक द्वीप— पुराणोंमें शाकद्वीप क्षीरसागरसे घिरा हुआ बतलाया गया है। क्षीर सागरकी पहिचान 'कैस्पियन सागर' से की गई है। शाक द्वीपसे तात्पर्य स्पष्ट है कि जहाँ शकोंका राज्य था। प्राचीन इतिहासके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि एशियामें शकोंका एक महत्वपूर्ण राज्य था। भारतीय इतिहासके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि भारतके उत्तरोपश्चिमी दर्रोंसे होकर शक एवं हूणोंने भारतपर आक्रमण किये। ये शक ईराक और ईराक प्रदेशमें बसे हुये थे अतः शाक द्वीपकी स्थिति एरियाना प्रदेश थी।

३ प्लाक्ष द्वीप— प्लाक्ष द्वीप इक्षुरस समुद्रसे घिरा हुआ बतलाया गया है। इक्षुरसकी पहिचान आमूदरियासे की जा चुकी है और इक्षुरस समुद्र कैस्पियन सागरके उस भागको जो कि अब मैदान हो गया है, कहा गया है। हुएँनसांगके अनुसार इक्षुकल समुद्र (इक्षुरस समुद्र) अक्सूसे ११० मीलपर स्थित बतलाया गया है। प्राचीन समयमें आर्य इसी प्लाक्ष द्वीपमें रहते थे। जेन्दावेस्ताके अनुसार आर्य लोग बैक्ट्रिया प्रदेशमें एवं समीपवर्ती प्रदेशोंमें रहते थे। आर्योंको पीपलवृक्ष अधिक प्रिय था और वहां इस प्रकारके पेडोंकी बहुतायत थी अतः उस द्वीपका नामकरण इस प्रकार किया। वर्तमान चीनी तुर्किस्तान जिसमें बुखारा, तुर्कमान्, उज्जबेकका भी क्षेत्र सम्मिलित हैं। अतः प्लाक्षद्वीप वर्तमान 'चीनी तुर्किस्तान' कला प्रदेश था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४ क्रौञ्च द्वीप–प्राचीन समयसे ही कूचा प्रदेश अपनी सभ्यता एवं संस्कृतिके लिये प्रसिद्ध था। यह प्रदेश तकलामकान और तारीम नदीका वे सीन ही है। ये वे स्थान थे जिनकी सभ्यता और संस्कृति संसारमें एक विशेष महत्व रखती थी और उनकी प्रसिद्धि संसारके कोने कोनेमें फैली हुई थी। यह क्रौञ्च द्वीप ही भाषा परिवर्तनके नियमानुसार कूचा द्वीप रह गया। इस प्रकार कूचा प्रदेश ही पुराणोंका क्रौञ्च द्वीप था।

५ कुश द्वीप— कुश द्वीप घृत सागरसे घिरा हुआ बतलाया गया है। ५०० ईसवी पूर्व ईरानके सम्राट दारय-बहु प्रथमके लेखोंमें अफ्रीकाके एबसीनिया प्रदेशको 'कुष' देशके नामसे अभिहित किया गया है।[1] अतः एबसीनिया प्रदेश ही कुश द्वीप था।

६ शाल्मलि द्वीप— शाल्मलि द्वीप सुरा समुद्रसे घिरा हुआ बतलाया गया है। सुरा समुद्रकी पहिचान अरल सागरसे की जा चुकी है अतः यह द्वीप अरलसागर एवं सीरदर्याका मध्यवर्ती प्रदेश होना निश्चित होता है। इस प्रकार यह प्रदेश वैक्ट्रिया प्रदेश है। वैक्ट्रिया प्रदेशमें आर्योंका निवास था और यह नाम आर्योंके समयसे ही प्रसिद्ध था।

७ पुष्कर द्वीप— 'भागवत' में पुष्कर द्वीपके सम्बंधमें भी उसी प्रकारसे वर्णन मिलता है जैसा वर्णन विष्णुधर्मोत्तर पुराणमें प्राप्त होता है। पुष्कर द्वीप अपने समान आकारवाले स्वादुजल समुद्रसे घिरा हुआ है। इस द्वीपके मध्यमें मानसोत्तर नामका एक पर्वत है जो उसके पूर्वीय और पश्चिमी विभागोंका विभाजन करनेवाला एकमात्र पर्वत है।[2] उच्च एशियाके भौगोलिक अध्ययनसे ज्ञात होता है कि जुंगेरियामें 'मानस' नामकी एक नदी बहती है।[3] यह नदी लोबनूर झीलमें मिल जाती है।[4] मानसके उत्तरमें थियेन-शानकी श्रेणियां (अल्माअटा पर्वत) हैं जो पूर्वी और पश्चिमी भागमें द्वीपको विभाजित करता है। वह द्वीप स्वादुजल समुद्रसे घिरा हुआ है। बालकश एवं लोबनूर झील ही संसारमें सबसे अधिक स्वादिष्ट झील मानी जाती है अतः बालकश झील ही स्वादुजल समुद्रको इंगित करती है।

इस प्रकार पौराणिक भूगोलके सप्त द्वीपों एवं सप्त समुद्रोंका संक्षिप्ततः निम्नानुसार वर्तमान स्वरूप निश्चित किया जा सकता है।

प्राचीन द्वीप	वर्तमान स्थिति (देश व स्थान)
१ जम्बू द्वीप	भारत, तिब्बत, हिरात, वदतशो, समरकंद, किरजीज, काशगर, तज्जिक प्रदेश, पामीरका पठार
२ शाक द्वीप	एरियाना प्रदेश
३ प्लाक्ष द्वीप	तुर्कमान, बुखारा, उज्ज्वेक
४ क्रौंच द्वीप	कूचा प्रदेश, तकलामकान
५ कुश द्वीप	एबसीनिया प्रदेश (मिस्र)
६ सालिमलि द्वीप	दक्षिणी कज्जाक प्रदेश
७ पुष्कर द्वीप	जुंगेरिया प्रदेश

प्राचीन समुद्र	वर्तमान समुद्र या झील एवं उनकी स्थिति
१ लवण सागर	सांभर झील
२ क्षीरोद सागर	कैस्पियन सागर
३ इक्षुरस समुद्र	कैस्पियन सागरका मरुभूमि
४ दधि सागर	लोबनूर झील
५ घृत सागर	रक्त सागर
६ सुरा सागर	सीरदर्या
७ स्वादुजल समुद्र	बालकश झील

१ मार्कण्डेय पुराणका एक सां. अध्ययन– डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल पृ. १३८
२ भागवत स्कंद ५ अ. २० (३०)
३ आक्स फोर्ड एटलस
४ एशियाकी भौगोलिक समीक्षा— कृपाशंकर गौड

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक : श्री शोभनाथ पाठक

वैदिक वाङ्मयमें वर्ण व्यवस्थाका समन्वयात्मक स्वरूप

वैदिक वाङ्मयकी वरीयता जहां ज्ञान व कर्मकांडकी अपरिमित थाती संजोये बखानी जाती है वही उसका समन्वयात्मक संबल भी युगको संवारनेमें पूर्णतः सक्षम है। कुछ लोग बरबस ही इसपर वर्णभेदकी शंका करते व छूवाछूतका आरोप लगाते हैं जो निराधार है। यदि हम इस विश्वके सर्वाधिक समृद्धिपूर्ण वाङ्मयके अन्तलमें पैठे तो स्पष्ट हो जायगा कि वैदिक साहित्यमें किसी भी प्रकारके भेदभावका रंचमात्र भी स्थान नहीं है। इसका द्वार सबके लिए खुला पडा है सब इस ज्ञान सागरमें गोते लगा विश्व-बंधुत्वका शंखनादको तो देखिये समष्टि स्त्रोतका उफान भ्रातृत्व राशि पर—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास,
एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।

(ऋग्वेद ५।६०।५)

अर्थात् मनुष्योंमें जन्मसिद्ध कोई भेदभाव नहीं है। उनमें कोई बडा और कोई छोटा नहीं है। वे सब आपसमें बराबरके भाई हैं। सबको मिलकर अभ्युदयपूर्वक मोक्षकी प्राप्तिके लिए प्रयास करना चाहिए। भला समाजकी एकसूत्रताका इससे बडा उदाहरण क्या हो सकता है जिसमें बिना किसी भेदभावके भ्रातृत्वकी भावनाको उभार प्रगतिकी ओर उन्मुख किया गया है यही नहीं वरन छूआ छूतका स्पष्ट निषेध यजुर्वेदके इस मंत्रमें देखिये—

समानी प्रपा सह वोऽन्नभाग,
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा,
नाभिमिवाभितः॥ (अथर्व. ३।३०।६)

अर्थात् हे मनुष्यो! तुम्हारे पानी पीनेके स्थान और तुम्हारा अन्नसेवन अथवा खान पान एक साथ हों। मैं तुम सबको एक ही प्रकारके नियमोंके बन्धनमें जोडता हूं। तुम सब मिलकर इस प्रकार अग्निहोत्र आदि सार्वजनिक तथा सर्वोपकारक यज्ञोको करो जिस प्रकार नाभिमें अरें दृढतासे जुडे रहती है। यही नहीं वरन् जरा इस मंत्रमें समन्वयात्मक भावकी सबलताको परखिये—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

(ऋग्वेद १०।१९१।२-३-४)

अर्थात् हे मनुष्यो! जैसे सनातनसे विद्यमान दिव्य शक्तियोंसे सम्पन्न सूर्य, चंद्र, वायु, अग्नि आदि देव परस्पर अविरोध भावसे अपने अपने कार्योंको करते हैं, वैसे ही तुम भी समष्टि भावनासे प्रेरित होकर एक साथ कार्योंमें प्रवृत्त होओ, ऐकमत्यसे रहो और सद्भाव वरतो। तुम्हारी मंत्रणामें, समितियोमें, विचारोमें और चिंतनमें समानता हो, सद्भावना हो, वैषम्य व दुर्भावना न हो। तुम्हारे अभिप्रायोमें, हृदयोमें और मनोंमें एक ही भावना रहनी चाहिए, जिससे तुम्हारी सांघिक और सामुदायिक शक्तिका विकास हो सके क्यों कि—

'राष्ट्राणि वै विशः' (ऐतरेय ब्राह्मण ८।२६)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थात् जनता ही राष्ट्रको बनाती है। इसलिए राष्ट्रकी समस्त जनताको बिना किसी भेदभावके प्रगति पथपर बढते जाना चाहिए। अथर्ववेदमें तो यहां तक कहा गयाहै कि—

'यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि'

(अथर्व. १७।१।७)

अर्थात् हे भगवन् ! हमपर ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मनुष्य मात्रके प्रति, चाहे मैं उसे जानता हूं अथवा नहीं, सद्भावना रख सकूं। विश्वबंधुत्व ही तो वैदिक वाङ्मयका उद्देश्य है यथा—

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ (यजु० ३६।१८)

मैं मनुष्य यथा, सब प्राणियोंको मित्रकी दृष्टिसे देखूं, हम सब परस्पर मित्रकी दृष्टिसे देखें। इतना अधिक सामाजिक समन्वय जिस साहित्यकी थाती है उसमें छूआ-छूतका भेदभाव ढूंढना कहांतक उचित है। हां जो चार वर्णोंकी व्यवस्था की गई थी वह कर्मानुसार ही थी न कि जन्मानुसार यथा—

ब्राह्मणः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शुद्रास्तथैव च।
एतस्य वंशे संभूता विचित्रा कर्मभिद्विजाः॥

(वायु पुराण)

अर्थात् गृत्समदका पुत्र शुनक, शुनकसे शौनक इस शौनकके चार लडके कर्मभेदसे ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र वर्ण हुए। यही बात इस रूपमें भी बताई गई है कि एक ही वंशसे इन चारों वर्णोंका उद्भव हुआ जो बादमें कर्मानुसार विभक्त हो गये यथा—

एते ह्यांगिरसः पुत्रा वंशेऽथभार्गवे।
ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च भरतर्षभः॥

(हरिवंश पुराण अ० ३१)

अर्थात् भार्गव वंशमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चारो वर्ण हुए। कूर्मपुराण १०१२ में बताया गया है कि ऐलके वेदके विद्वानोंमें श्रेष्ट पुत्र शूद्र हुए अर्थात् वेदज्ञ होनेपर भी उन्होंने आजीविकाके लिए शूद्र वर्ण स्वीकार किया। मत्स्यपुराणमें उल्लेख है कि मनुके पुत्र वामदेवके पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र हुए। कहनेका तात्पर्य कि वैदिक वाङ्मयकी यथार्थताको परखनेसे स्पष्ट होता है कि जो वर्ण व्यवस्था इस समय प्रचलित रही है वह आदिकालसे नहीं थी वरन् विदेशी घुस पैठ और साम्राज्यने भारतीय विखंडनके लिए इन तत्वोंको उभारकर परस्पर भेदभाव पैदा किया जिसे पाश्चात्य इतिहासकारोंने भी खूब पनपाया। इसका ही परिणाम रहा कि उस युगका भारत तो विश्व-गुरुकी गरिमासे मंडित रहा जब कि पाश्चात्य आवरणमें लिपटकर वह किस अधोगतिको पहुंच गया था जिसका साक्षी इतिहास है।

पर अब हम स्वतंत्रता प्राप्तिके बाद काफी प्रगति कर चुके हैं। समाजवादकी ओर उन्मुख नई पीढी इस वास्तविकताको परख चुकी है कि जातिपांतिका भेदभाव हमारे लिए घातक विषपान है जिसकी जड विदेशियोंने रोपा, 'फूट डालो और शासन करो' क्या भगवान् रामके उस आदर्शको भुलाया जा सकता है। जब उन्होंने भीलनी शबरीके जूठे बेर खाय थे; निषाद राजको गले लगाया था। बहुतसे उदाहरण है जिससे स्पष्ट होता है कि हमारा सामाजिक आदर्श बिना किसी भेदभाव व वर्ण वैशम्यके था। विदेशी हस्तक्षेपने यह सब गडबड किया था जिसकी यथार्थता अब हम भांप गये हैं। तभी तो अपने इस प्रजातंत्रमें सभी बिना किसी भेदभावके आगे बढ रहे हैं। अभी अभी युद्धमें भारतकी ५५ करोड जनता किस प्रकार एक सूत्रमें आबद्ध हो गई, विश्वके लिए आदर्श ही है। हमारा तो यही आदर्श है कि हम सब एक हैं जातिपांति छूआछूतका कोई भेदभाव हममें नहीं है। और न रहेगा।

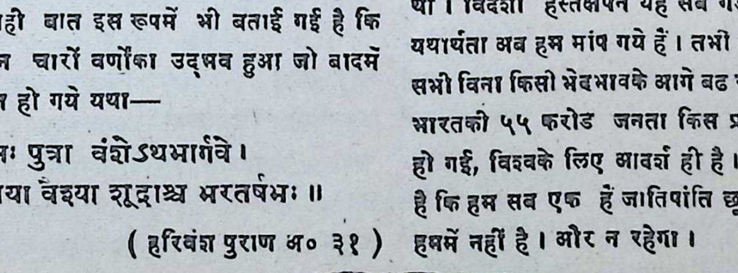

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धर्मवीर ग्रन्थमाला और नई दिल्लीमें महर्षि दयानन्द वेद विश्वविद्यालयका

ऐतिहासिक निर्माण

महर्षि दयानन्द वेद विश्वविद्यालय निर्माण समिति, नई दिल्लीके अध्यक्ष, धर्मशिक्षा और मानवजीवन नामक महा ग्रन्थके लेखक वेदपथिक पं. धर्मवीरजी आर्य झंडाधारीने दीपावलीके स्वर्ण अवसरपर विश्वके वेद भक्तोंके नाम एक संदेश प्रसारित करके यह बतलाया है कि १९७३ की शिवरात्रिके स्वर्ण प्रभातमें भारतकी राजधानी नई दिल्लीमें चतुर्वेद ब्रह्मपारायण महायज्ञके अनुष्ठानके साथ ही महर्षि दयानन्द वेद विश्वविद्यालयकी आधार शिला महा महीम उपराष्ट्रपति श्रीमान गोपाल स्वरूपजी पाठकके करकमलोंसे रखवानेके लिये प्रयास किया जा रहा है।

श्री वेदपथिकजीने उपराष्ट्रपतिजीके नाम अपना महत्त्वपूर्ण पत्र आधारशिलाकी स्वीकृतिके लिये भेजा है।

श्री झंडाधारीजीने देश और विदेशोंकी समाचार समितियोंको और आकाशवाणीके संवाददाताओंको, भारत सरकारके सूचना मंत्रालयको यह बतलाया कि महर्षि दयानन्दके बतलाये हुए विश्वव्यापी वैदिक विचारधाराके प्रचारसे और वेदोंके प्रचारसे ही विश्वशान्तिका सूर्य उदित होगा।

श्री वेदपथिकजीने यह भी बतलाया है कि धर्मशिक्षा और वेदोक्त धर्मयुक्त जीवनके निर्माणके बिना आज विश्वकी मानवता खतरेमें है।

श्री वेदपथिकजीने यह कहा है कि आर्यसमाजकी पावन शताब्दीके उपलक्षमें भारतवर्ष देशको पुन: विश्वका गुरु बनानेकी भव्य भावनासे महर्षि दयानन्द वेद विश्वविद्यालय, महर्षि दयानन्द वेद विज्ञान भवन, महर्षि दयानन्द अन्तर राष्ट्रिय उपदेशक महा विद्यालयका ऐतिहासिक निर्माण दिल्लीमें होने जा रहा है।

श्री आर्यजीने बतलाया है कि धर्मवीर ग्रन्थमालाका अनुपम सुमन धर्मशिक्षा और मानवजीवन अठारह अध्यायोंका यह नूतन ग्रन्थ राज संस्करणमें श्रीमान दानवीर पद्मभूषण वेद रत्नजी मोहन सदस्य राज्य सभा दिल्लीके सात्विक दानसे प्रकाशित हो रहा है। यह ग्रन्थ उपराष्ट्रपतिजीको शिवरात्रिके स्वर्ण अवसरपर भेंट किया जायेगा।

वेदपथिकजीने कहा है कि सुनहरी जिल्दमें इस ग्रन्थका मूल्य १५ रु. प्रति है देश और विदेशोंकी कोटि २ आर्य जनतासे वेदपथिकजीने अपील किया है कि इस ग्रन्थको लाखों और करोडोंकी संख्यामें खरीदकर वेद विश्वविद्यालयके निर्माण महायज्ञमें सब सहायक बने। श्री वेदपथिकजीने अंतमें यह कहा है कि महर्षि दयानन्द वेद विश्वविद्यालयकी योजनापर दस करोड रुपये खर्च किये जायेंगे। वेदपथिकजीने विश्वके मानव मात्रसे इस यज्ञमें सहायक बननेकी अपील किया है।

श्री वेदपथिकजीने विश्वके वेद भक्तोंसे अनुरोध किया है कि १९७३ की शिवरात्रितक दस करोड रुपयोंका कोष एकत्र करनेमें अधिकसे अधिक धन भेजकर वेद विश्वविद्यालयके इतिहासमें अपना शुभ नाम अमर करें।

श्री वेदपथिकजीने कहा है कि १०१ रु. से लेकर एक लाख रुपयों तकके दानवीरोंके शुभ नाम संगमरमरपर वेद विश्वविद्यालयमें अंकित किया जायेगा।

धन कोषाध्यक्ष महर्षि दयानन्द वेद विश्वविद्यालय निर्माण समिति, अहाता ठाकुर दास, सरायरुहेला, नई दिल्ली – ५ (भारत) के पतेसे भेजें।

महर्षि दयानन्द वेद विश्वविद्यालय
निर्माण समिति,
सरायरुहेला, नई दिल्ली–५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पवित्र विचार बढ सकते हैं। अपने विचारोंका प्रदर्शन वक्तृत्वमें हो सकता है और अध्ययनसे अपनेमें सुविचारोंका संवर्धन हो सकता है। इसलिये जैसी भाषण करनेके समय खबरदारी रखना उचित है, ठीक उसी प्रकार पठन और श्रवणके विषयमें भी सावधानता रखना योग्य है। अपने अंदर योग्य सुविचार बढाने चाहियें और अपने मुखसे सुविचारोंका ही फैलाव करना चाहिये।

इसलिये वेदोंका स्वाध्याय प्रतिदिन करना आवश्यक है। जो ऐसा नहीं करेंगे उनकी वाणीका वीर्य बढ नहीं सकता और वाणीकी सिद्धिसे वे वंचित रहेंगे। वेदका स्वाध्याय करनेका निश्चय करना आवश्यक है और प्रतिदिन कमसे कम एक मंत्र नित्य मनन करनेके लिये रखनेसे बहुत लाभ हो सकता है। मंत्रके अंदर जो आशय रहता है, उस भावनासे मन परिपूर्ण रखना आवश्यक है। इस प्रकार तप और स्वाध्याय करनेसे बडा लाभ होता है।

शरीर, इंद्रिय, वाणी आदिके विषयमें थोडासा ऊपर कहा है। अब मनके तपके विषयमें थोडासा कहना आवश्यक है। मनके अंदर शुभ भावना रखनेका प्रयत्न होना चाहिये। मन बडा चंचल है, इसलिये यह होना कठिन है, इसमें कोई संदेह नहीं, तथापि इस दिशासे प्रयत्न होना चाहिये। जिस समय अपने मनमें बुरा विचार आ जाय, उसी समय मनको कहना चाहिये कि ' हे मन ! तू इस प्रकार अयोग्य विचार न कर, मैं तुझको स्वतंत्र भटकने नहीं दूंगा। तुझको शुभ विचारोंमें ही स्थिर रहना चाहिये। ' आपका मन जिस समय भटकने लगेगा, उस समय आप उसको उक्त प्रकार कहते जाइये और उसको अपना पूर्ण निश्चय बताइये। मनको अपनेसे अलग मूर्तिमान् समझकर आप उससे बातचीत कीजिए। जैसी आप अपने नौकरको आज्ञा करते हैं, उसी प्रकार आप अपने मनसे कहते जाइये। प्रथमतः आपको यह कथन उपहासरूप प्रतीत होगा, परंतु यदि आप अनुभव लेंगे, तो इस प्रकार मनको आज्ञा करनेका कितना श्रेष्ठ परिणाम होता है, इसका आपको ही स्वयं ज्ञान हो जायगा।

मनको सदा प्रसन्न रखिये। थोडेसे कष्टसे मनकी चंचलता न होने दीजिये। कैसा भी प्रसंग आ गया, तो भी मनको शांत रखनेका अभ्यास कीजिये। यदि आपके मनमें चंचलता होगी तो उसको थोडा थोडा रोकते जाइये। मनमें प्रसन्नता, शांति, धैर्य और उत्साह रखिए। खेद, अशांति, भीति और निरुत्साह न रखिये। मनको ऐसा बनाना आपके अधीन है और यह जितना कठिन आप समझते हैं, उतना कठिन भी नहीं है। एक बात यहां कहना आवश्यक है कि यदि मनके अंदर उत्साह बढानेका आप प्रयत्न करेंगे, तो आपकी शारीरिक व्याधियां भी हट जायेंगी। बहुतसी व्याधियां उत्साहभंग होनेके समय उत्पन्न होती हैं। यह अनुभवकी बात है, इसलिये यहां लिखी है। पाठक इससे विना औषधि आरोग्य प्राप्त कर सकते हैं। प्रयत्न करके देखिये।

इस प्रकार तप, स्वाध्याय और प्रसन्नताका अभ्यास करना चाहिये। इसके साथ साथ परमेश्वरकी भक्ति करना आवश्यक है; क्योंकि सब श्रेष्ठ गुणोंका वही स्रोत है। योगसाधन करनेवालेको इस प्रकार अपनी भूमिका तैयार करनी चाहिये।

५ पृष्ठवंशका महत्त्व

बहुत लोगोंका यह ख्याल है कि केवल प्राणायाम, ध्यानधारणा आदि कुछ विशेष प्रकारके अनुष्ठानको ही ' योग-साधन ' कहना योग्य है। परन्तु यह विचार ठीक नहीं है। जो योगसाधन विषयपर केवल वक्तृत्व करना चाहते हैं, अवश्य कहें कि केवल ध्यानधारणा ही योगसाधन है और व्यवहारके अन्य नियम योगसाधनमें अंतर्भूत नहीं होते। परंतु जो योगसाधनको अपने जीवनमें ढालना चाहते हैं, वे वैसा नहीं कह सकते। इनके लिये अपना हरएक श्वास और उच्छ्वास तथा हरएक हलचल योगके विधिके अनुसार ही करना उचित है। अन्यथा योगकी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

योगका विषय केवल बोलनेका नहीं है, प्रत्युत स्वयं निश्चयपूर्वक आचरण करनेका है। जिसका जैसा इस मार्गके अनुसार आचरण होगा, उसको वैसी सिद्धि निश्चय-पूर्वक प्राप्त हो सकती है। अनुष्ठानमें थोडी भी अशुद्धि हो गई, तो सिद्धि उस प्रमाणसे दूर रहती है। इसी कारण अपना सब व्यवहार योगके अनुसार करना हरएकको उचित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कई लोग समझते हैं कि योगका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य ऐहिक व्यवहारके लिये निकम्मा बन जाता है। परन्तु यह विचार बिलकुल ठीक नहीं है। वास्तविक रीतिसे विचार किया जायगा तो पता लग सकेगा कि योगका अनुष्ठान न करनेसे ही मनुष्य निकम्मा बन रहा है। योगके अभ्याससे मनुष्यकी प्रत्येक शक्ति विकसित होती है। जैसा फूल खिल जानेसे शोभा बढती है उसी प्रकार योगसाधनके अनुष्ठानसे मनुष्यकी सब आंतरिक और बाह्य शक्ति प्रफुल्लित हो जानेसे मनुष्यका पूर्ण विकास हो सकता है। शारीरिक, वैयक्तिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, कौटुंबिक, गृह-विषयक, नागरिक, जातीय, देशीय, प्रांतीय, राष्ट्रीय तथा राष्ट्रांतरीय सब प्रकारके व्यवहार उत्तम प्रकारसे करनेके लिये जो योग्यता चाहिये वह योगसाधनसे निःसंदेह प्राप्त होती है। परन्तु सर्वसाधारण जनतामें योगविषयक कल्पनाएँ इतनी संकुचित हैं कि जिनके कारण ही मनुष्य प्रतिदिन गिर रहा है और इतना होनेपर भी फिर योगसाधनसे डरता रहता है।

हां! इतनी बात सच है कि जो दुराचार और नाना प्रकारके दुर्व्यसनोंके कारण व्यभिचार और अत्याचार किये जाते हैं, उनसे दूर रहना पडता है; इसलिये दुराचारी और दुर्व्यसनी लोगोंकी दृष्टिसे योगाभ्यास कदाचित् अनुष्ठानके योग्य न होगा, परन्तु दुर्व्यसनोंके कारण उन्नति होती है। ऐसा जबतक सिद्ध नहीं होगा, तबतक किसीको भी योगसाधनसे दूर रहना उचित नहीं है। क्योंकि सब सत्य, आनंद और श्रेष्ठ सुखोंकी- प्राप्ति इसी योगके अनुष्ठानसे होती है।

आजकल दुर्व्यसनोंका प्रचार इतनी भयानक रीतिसे हो रहा है और किसी देशमें कोई सरकार उसके प्रतिबंधके लिये किसी प्रकारका भी यत्न नहीं कर रही है, यह सचमुच आश्चर्य है!!! सर्वसाधारण जनता अपने हितके विषयमें उदासीन है और किसी सरकारका अपनी प्रजाके हितसाधन करनेमें योग्य लक्ष्य नहीं है। यह बात और है कि किसी देशमें एक बातका प्रबंध उत्तम है और किसी देशमें न्यून है। परन्तु योगमार्गकी दृष्टिसे सब राष्ट्रोंमें किसी प्रकारका भी उचित प्रबंध नहीं है। हमारे प्राचीन आर्यराष्ट्रमें इस प्रकारका उत्तम प्रबंध था और सर्वसाधारण जनताके दैनंदिनीय व्यवहारमें योगके मार्गका अनुष्ठान न्यूनाधिक रीतिसे राजशासनके द्वारा ही रखा गया था। परन्तु वह समय आज नहीं है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको अपने तथा अपने संबंधी और इष्टमित्रोंके आचरण और अनुष्ठानका विचार करने तथा उनमें योगसाधन करनेकी बुद्धि जागृत करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

आजकल नगरों और ग्रामोंमें चाय, काफी, कोको आदि उष्ण पेयोंके व्यसन; सोडावाटर, लेमोनेड, जिंजर आदि शीत पेयोंके व्यसन; तमाखु, सिगारेट, हुक्का, बीडी, तमाखूका खानपान नस्य आदि प्रकार; भंग चरस आदि धूम्रपानसे दुष्ट दुर्व्यसन; भंगकी ठंडाई, ताडी, माडी, मदिरा, आसव, मद्य आदि सब प्रकारके अत्यंत हानिकारक, भयानक और विनाशक दुष्ट दुर्व्यसन जनतामें प्रचलित हो रहे हैं!!! चाय, काफी, सिगारेट आदि तो सभ्य समाजमें भी घुस गये हैं!! इनमें हरएक व्यसन बुद्धि, मन और शरीरका घातपात करनेके लिये समर्थ है, फिर जहां सब मिलकर हमला चढाते हैं, वहां पूछना ही क्या है? अकाल मृत्यु इनके कारण बढ रहा है, परन्तु शिक्षित और अशिक्षित कोई भी इसका विचार नहीं करते!!! पाठकगण! सोचिये तो सही कि जनताका प्रवाह किस प्रकार विनाशकी ओर जा रहा है!

पाठकोंको यही इतना ही बताना है कि यदि उनके मनमें योगसाधनद्वारा अपनी उन्नतिका साधन करना है तो उनको उचित है कि वे किसी व्यसनके फंदेमें न फंसे; और अपने मित्रों तथा संबंधियोंको भी बचावें। शुद्ध जलपान और सात्त्विक भोजन परिमित प्रमाणमें करनेके साथ योगसाधन करनेसे उत्कृष्ट लाभ हो सकता है। परन्तु किसी व्यसनका गुलाम बनकर यदि योगसाधनके प्राणायाम आदि विधि किये जांयगे, तो निःसंदेह रोग बढेंगे और विविध कष्ट प्राप्त होंगे। इस लिये योगमें प्रवृत्त होनेवालेको उचित है कि वह अपने खानपानके व्यवहारमें योग्य दक्षता रखे।

योगसाधनसे दीर्घ आयुष्य और नीरोगता रूप शारीरिक फल होता है, सूक्ष्म विचार करनेवाला उत्साही मन प्राप्त होता है, अतींद्रिय विषयोंका साक्षात्कार बुद्धिसे हो सकता है और विविध आत्मशक्तियोंके अनंत चमत्कार इस योगसाधनसे सिद्ध हो सकते हैं। जगत्के संपूर्ण व्यवहार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करते हुए मनुष्य उक्त योग्यता प्राप्त कर सकता है। परन्तु अपने हरएक व्यवहारकी जांच मनुष्यको करनी चाहिये, अन्यथा उन्नति नहीं हो सकती। छोटेसे छोटे व्यवहार और चालचलनका योग और स्वास्थ्यके साथ कितना घनिष्ठ संबंध है, इसका थोडासा उदाहरण यहां बताया जाता है। बैठने, खडे होने और सोनेका ही इसके लेखमें विचार करेंगे। सभी मनुष्य बैठते हैं, खडे होते हैं और सोते हैं, परन्तु योगसाधनका इनसे क्या संबंध है? योग इनके विषयमें क्या शिक्षा देता है? इसका विचार बहुत ही थोडे लोग करते हैं और योगके अनुसार बैठते, खडे रहते और सोते हैं।

पाठक जन कदाचित् आश्चर्य करेंगे कि केवल बैठने, केवल खडे रहने और केवल सोनेमें योगका क्या संबंध है? इनके संबंधका स्पष्ट पता लगानेके लिये अपने पीठकी हड्डियोंका थोडासा विचार करना चाहिये। पिंडलीकी हड्डी, रीढकी हड्डी, जो पीठमें सिरसे चूतडोंतक अनेक छोटी हड्डियोंका एक स्तंभ जैसा है वही जीवनका मुख्य स्तंभ है। योगके प्रत्येक अनुष्ठानका इस मणिस्तंभके साथ अत्यंत निकट संबंध है। आसनोंके अभ्याससे इस स्तंभके प्रत्येक मणिका दूसरे मणिके साथ संबंध सुयोग्य प्रकारसे होकर बीचके ज्ञानरज्जुओंको पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त होता है। इन रीढकी हड्डियोंके बीचमेंसे ही सब ज्ञानतंतुओंके जाल फैले हैं और इस लिये यदि इस पृष्ठवंशमें टेढापन उत्पन्न हुआ तो उस स्थानके ज्ञानतंतु हड्डियोंके दबावके कारण क्षीण होने लगते हैं और जब ज्ञानतंतुओंमें क्षीणता आने लगती है, तब उस ज्ञानतंतुओंके क्षेत्रमें विविध बिमारियोंके लिये स्थान बन जाता है। इससे पाठक जान सकते हैं कि इस रीढकी हड्डियोंके पृष्ठवंशमें किसी प्रकारका अयोग्य टेढापन उत्पन्न न करनेकी कितनी आवश्यकता है। अयोग्य समयमें वृद्धावस्था, विविध प्रकारके रोगोंका शिकार बननेकी स्थिति, मनकी उत्साहहीन अवस्था आदि सब इस पृष्ठवंशके बिगाडसे होती है।

मनुष्य जब खडा होता है अथवा बैठता है, तब आप उसके पीठ, कमर, गला और सिरका अवश्य ख्याल कीजिये कि इनकी अवस्था कैसी है। प्रायः चलते हुए मनुष्यका सिर आगे झुकता है, ऐसा आप देखेंगे। सिरका आगे झुकाव होनेसे उनके गलेकी शक्ति क्षीण हो जाती है। संध्याके इंद्रियस्पर्शमन्त्रोंमें 'कंठ' शब्द कंठविषयक सावधानीकी सूचना दे रहा है। गलेके व्यायामोंसे गलेमें इतनी शक्ति अवश्य बढानी चाहिये कि वह गला अपने सिरका भार अवश्य सहन कर सके। सिरके बोझसे गलेका आगे झुकाव बता रहा है कि पृष्ठवंशका सबसे महत्त्वका गलेका भाग अर्थात् वहांकी रीढकी हड्डियां अपने स्थानसे आगे झुकने लगी हैं और वहांके ज्ञानतंतुओंपर विनाकारण दबाव पड रहा है, उनकी अवश्य क्षीणता हो रही है।

लिखनेके समय सिरका झुकाव आगे होता है। बैठकर लिखनेवाले और कुर्सीपर बैठकर कागज टेबलके ऊपर रखकर लिखनेवाले ये दोनों यदि सावधानता न रखेंगे, तो उनका सिर लिखनेके समय आगे झुकेगा और पीठमें भी आगे झुकाव उत्पन्न होगा। लिखनेका व्यायाम करनेवालोंके लिये अत्यंत आवश्यक है कि वे अपनी पीठ, गर्दन और सिर समसूत्रमें रखनेका अवश्य यत्न करें और अपने आपको उक्त हानिसे बचावें। गलेके पृष्ठवंशमें टेढापन आनेसे उदान प्राणके स्थानका बिगाड होता है और इस कारण वहांका स्वास्थ्य निश्चयसे बिगड जाता है। तथा पीठमें अंदरकी तरफ झुकाव होनेसे फेंफडे दब जाते हैं और फेंफडे दब जानेसे प्राणका स्थान संकुचित होता है। जहां प्राणका संकोच होनेका भय है, वहां हरएक प्रकारकी बीमारीका अवश्य ही संभव है। यह बात कभी भूलनी नहीं चाहिये कि प्राणपर ही हमारा जीवन निर्भर है।

जब लोग बैठनेके समय सीधे समसूत्रमें न बैठते हुए अंदरकी तरफ झुककर बैठते हैं और सिरको और भी अंदर झुका देते हैं, तब न समझते हुए वे अपने मृत्युको पास करते हैं। तथा विविध बीमारियोंको मानो निमंत्रण देते हैं। इसलिये योगशास्त्रमें कहा है कि शरीर, गला और सिरको समसूत्रमें रखना चाहिये।

चलनेके समयमें भी आगे झुककर चलनेसे सारे पृष्ठवंश-पर अस्वाभाविक दबाव पड जाता है। इस प्रकार चलनेका बुरा अभ्यास ठीक नहीं है। सोनेके समय बडा ऊंचा सिरोना सिरके नीचे लेकर सोनेका बहुत बुरा अभ्यास कइयोंको होता है। निद्रामें कि जिस समय शरीरकी समानशक्ति कार्य करती है, और जिस निद्रामें मनुष्यके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विविध अत्याचारोंमें उत्पन्न होनेवाली न्यूनताकी पूर्ति करनेका समान प्राणका व्यवहार चलता है, कमसे कम इस समयमें भी मनुष्यको उचित नहीं है कि वह बडा भारी सिरोना सिरके नीचे रखकर सिरको अपने पृष्ठवंशसे टेढा रखनेका प्रयत्न करे !! पीठपर सोनेके समय तो वास्तविक सिरोनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं, परंतु दायें अथवा बांयें अंगपर सोनेके समय कुछ थोडेसे सिरोनेकी आवश्यकता होती है इस समय सिरोना न होनेसे सिर उस दायें अथवा बांये भागमें झुकने लगता है। तात्पर्य सिरोना प्रतलेसे पतला अपनी आवश्यकतानुसार रखना उचित है और इसका हमेशा विचार रखना चाहिये कि अपना पृष्ठवंश टेढामेढा तो नहीं हो रहा है ?

मनुष्यको पृष्ठवंशमें स्वयं नैसर्गिक एक प्रकारकी वक्रता है। वह वैसी ही रहनी चाहिये। चूतडोंमें पृष्ठवंश थोडासा पीछे होकर कमरमें थोडासा आगे झुककर फिर पीठमें थोडासा पिछे झुकता हुआ गलेमें थोडासा आगे झुककर सिरमें प्रविष्ट होता है। यह नैसर्गिक अतएव स्वाभाविक वक्रता वैसी ही रखनी चाहिये। मनुष्यके प्रयत्नसे इसका सीधेपन हो ही नहीं सकता और होना अभीष्ट भी नहीं है। इस स्वाभाविक वक्रताको छोडकर जो टेढापन मनुष्यकी कृतिसे बन रहा है और जो बैठने चलने सोनेके समय विशेष ख्याल न रखनेके कारण उत्पन्न होता है, वह पृष्ठवंशका अस्वाभाविक टेढापन बहुत घातक है। प्रत्येक पाठकको इसलिये इस विषयमें सावधानी धारण करनी चाहिये।

योगमें प्रायः प्रत्येक आसन और विशेषतः शीर्षासन, चक्रासन आदि उक्त दोषको ठीक करनेके लिये ही हैं। अपनी हनु-को-कंठ मूलमें लगानेका अभ्यास गलेकी हड्डियोंको ठीक करनेके लिये ही विशेष कर है। पाठक उक्त बातका अभ्यास करके देखें। अपनी हनु अर्थात् ठोडीको गलेकी मूलमें लगाकर रखें। दोनों बाहुओंसे दो हड्डियां गलेके मूलमें आती हैं और उनके और गलेके मूल संधिमें एक अंगुष्ठ मात्र नरमसा स्थान होता है, वहां अपनी ठोडीको लगाकर थोडी देर स्थिर रहनेका अभ्यास करना चाहिये। इस आभ्यासको करनेपर पाठकोंको स्वयं अनुभव होगा कि गलेके स्थानकी रीढकी हड्डियां समसूत्रमें हो रही हैं, छाती आगे फैल रही है, फेंफडोंको खुला स्थान प्राप्त हो रहा है और पृष्ठवंशमें सीधापन आ रहा है। हनुको कंठमूलमें रखनेसे इतने लाभ हैं और भी इससे कई लाभ होते हैं।

दोनों बाहुओंसे जो दो हड्डियां कंठमूलमें आती हैं, उनके मध्यस्थानमें हनु (ठुड्डी) को रखनेका अभ्यास करनसे भी बहुत लाभ होता है। इसको 'कंठबंध' कहते हैं। इस कंठबंधके अभ्यासका बहुत लाभ शास्त्रोंमें वर्णन किया है। इससे लाभ होनेका मुख्य कारण इससे पृष्ठवंशका सीधापन हो जाना है, यही है। तथा यदि पाठक इसका ठीक अभ्यास करेंगे, तो स्वयं वे अनुभव कर सकते हैं कि पृष्ठवंशमें हलकापन इससे प्राप्त होता है। हलकापन ही आरोग्यका चिह्न है और भारीपन बीमारीका चिह्न है।

हड्डियोंके छोटे छोटे अनेक टुकडे एक दूसरेपर रहकर यह पृष्ठवंश बनता है। इस सब पृष्ठवंशकी एक ही अखंड हड्डी नहीं है। प्रत्येक दो हड्डियोंके सन्धिस्थानको पर्व कहते हैं। प्रत्येक पर्वमें मांसपेशी है। जब अस्वाभाविक दबाव पृष्ठवंशपर पडता है, तब यह मांसपेशी बहुत दब जाती है। जब आप पूर्वोक्त प्रकारका कंठबंध करेंगे, तब आप अनुभव कर सकते हैं कि अपने अस्वाभाविक झुकावके कारण जो दबाव पृष्ठवंशपर तथा पूर्वोक्त पर्वस्थानकी मांसपेशीपर पड रहा था, वह हट गया है और प्रत्येक पर्व ऊपर उठ रहा है और बीचकी मांसपेशीको अच्छा खुला स्थान मिल रहा है। थोडेसे अभ्याससे प्रत्येक पाठक इसका अनुभव देख सकता है।

कंठबंधका अभ्यास प्राणायामके साथ संबंध रखता है। इसका वर्णन आगे क्रमशः इस पुस्तकमें आ जायगा। यहां इतना ही बताना है कि केवल बैठने, खडे रहने, चलने फिरने, दौडने और सोनेके समय हमें किस बातका अवश्य ख्याल करना चाहिये और पृष्ठवंशका स्वास्थ्य किस प्रकार रखना चाहिये। इस साधारण व्यवहारके विषयमें भी योग कितनी योग्य शिक्षा दे रहा है, इसका विचार यहां पाठक अवश्य करें।

पीठको हमेशा लकडीके समान सख्त सीधा रखना चाहिये, ऐसा पाठक यहां न समझें। उसका अस्वाभाविक टेढापन हटाना और स्वाभाविक नैसर्गिक वक्रता तथा कार्यक्षमता स्थिर रखना योगको अभीष्ट है। जो पाठक योगके आसन करते जांयगे, उनको इस बातका पूरा अभ्यास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो जायगा और उनके पृष्ठवंशके सब दोष उक्त अभ्याससे दूर हो जायेंगे।

कंठबंधके तीन प्रकार पूर्व स्थानमें दिये ही हैं। उनके अभ्यास करनेके समय विरुद्ध गतिसे गलेको घुमाना भी आवश्यक है- (१) जब आप कंठमूलमें अपनी हनुको लगायेंगे, तो इसके पश्चात् आपको आवश्यक है कि आप अपनी ठोडीको ऊपर उठाकर गलेको जहांतक हो सके वहांतक ऊपर खेंचिये और गलेका पृष्ठभाग संकुचित करके सिरका पृष्ठभाग गलेके पिछले मूलमें लगाइये। ऐसा करनेके समय आपके आंख, नाक और मुख सीधे छतके सम्मुख अथवा आस्मानके सम्मुख हो जायेंगे, गलेका सामनेका भाग खींचा जायगा और पिछला भाग दबाया जायगा। (२) जब आप दाईं और बाईं हड्डियोंपर क्रमश: अपनी ठोडी रखनेका अभ्यास करेंगे, उस समयमें भी आपको उसकी विरुद्ध दिशामें पूर्वोक्त प्रकार ही सिरको पीछे ले जाना होगा। अर्थात् दाईं हड्डीपर हनु रखनेके पश्चात् बाईं पीठको और बाईं हड्डीपर हनु रखनेके पश्चात् दाईं पीठको पीछेसे सिर लगाना चाहिये।

इस प्रकारके अभ्याससे न केवल गलेका पृष्ठवंश, परंतु पृष्ठवंशका सभी भाग ठीक हो जाता है। पाठकगण इतने विवरणसे जान गये होंगे कि बैठना खडा रहना और सोना आदि योगकी दृष्टिसे किस प्रकार करना चाहिये। आप यदि दीवारके साथ बैठेंगे तो आपके चूतड, पीठ और सिरका पृष्ठभाग दीवारके साथ ठीक प्रकार लगना चाहिये। यदि आप दीवारके साथ खडे हो जायेंगे, तो अपने पांवकी एडी, चूतड, पीठ और सिरका पृष्ठभाग ठीक प्रकार दीवारके साथ लगना चाहिये। जो सिरपरसे पानीका घडा उठाकर लाते हैं, उनका गला, सिर, छाती आदि कैसी समसूत्रमें रहती है, आप अवश्य देखिये। सिरपर पानीका घडा उठानेके अभ्याससे भी गला बलवान् और समसूत्रमें हो जाता है। यदि इस प्रकार पानीका घडा सिरपर लेना आपकी अवस्थामें अनुचित है; ऐसा आपका विचार होगा, तो छोटे तीन लोटे पानीसे भरकर एकपर दूसरा और उसपर तीसरा सिरपर रखिये और अपने कमरेमें एक बाप इधरसे उधर भ्रमण कीजिये। लोटा अथवा पानी न गिरेगा तो आपका खडा रहना ठीक हुआ ऐसा समझिये और वैसा खडा रहनेका अभ्यास कीजिये। अथवा बडे दो चार पुस्तक सिरपर रखिये, उन्हें आप साफेपर भी रख सकते हैं और इधर उधर भ्रमण कीजिये। कोई पुस्तक आपके सिरपरसे नीचे न गिरेगा, तो आप समझिये कि उस प्रकार खडा रहना चाहिये। चाहे केवल दीवारके साथ खडे रह जाइये, पानीका घडा सिरपर धारण कीजिये अथवा पुस्तकें सिरपर उठाइये, जो मर्जी आवे वह कीजिये। इन बातोंमें कोई विशेषता नहीं है। जो मुख्य बात है, वह समसूत्रमें बैठने और खडे रहनेकी है, उसको जिस किसी प्रकार आप साध्य कीजिये और सिरको आगे झुकने न दीजिये तथा पीठको सीधा रखिये; छातीका भाग आगे फैलने दें कंधे पीछे रहें और फेंफडोंको अच्छी प्रकार फैलनेका अवसर दीजिये। बुद्धिका प्रवाह सिरसे पृष्ठवंशमेंसे गुजरकर नीचे तक पृष्ठवंशद्वारा फैलाना है, उसका प्रतिबंध न होने दें।

इस प्रकार पृष्ठवंशकी धारणा करनेके पश्चात् प्राणायाम करनेका अधिकार प्राप्त होता है, अथवा यों समझिये कि प्राणायामसे पूर्ण फलकी प्राप्ति हो सकती है। प्राणायामका एक स्थूल लाभ प्रसिद्ध ही है जो रक्तशुद्धिद्वारा शरीरका आरोग्य करता है। इसके अतिरिक्त जो अन्य लाभ हैं, उन सबका वर्णन यहां संपूर्ण रीतिसे किया ही नहीं जा सकता। तथापि सारांशरूपसे उसका स्वरूप यहां बताया जाता है।

उक्त पृष्ठवंशके साथ ज्ञानतंतु सब शरीरमें फैले हैं। जब पृष्ठवंशसे ज्ञानतंतु बाहर आते हैं, तब कुछ अंतरके पश्चात् अनेक ज्ञानतंतुओंकी एक एक ग्रंथि बनी होती है। योगकी उच्च भूमिकाकी सिद्धि इन ग्रंथियोंकी स्वाधीनतापर निर्भर है। इसको योगमें 'ग्रंथिभेद' कहते हैं। प्राणायामसे ही ग्रंथिभेदना होता है और दूसरा कोई साधन इस कार्यके लिये नहीं है। 'ऊर्ध्व भागमें जिस अश्वत्थ वृक्षका मूल है और जिसकी शाखाएं निम्न भागमें फैली हैं' (गीता अ. १५) ऐसा श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा हुआ वृक्ष यही है। इसके मूल मस्तिष्कमें हैं और शाखाएं पृष्ठवंशद्वारा निम्न भागमें सारे शरीरमें फैली हैं। पृष्ठवंशके प्रत्येक हड्डीके सन्मुख एक एक ग्रंथि है और इस ग्रंथिकी स्वाधीनतासे बडी विलक्षण सिद्धियां होती हैं। उदाहरणके लिये नाभिभागसे थोडे ही ऊपरके स्थानमें 'सूर्यग्रंथि' है। जब प्राणायामद्वारा इस ग्रंथिकी स्वाधीनता होती है, तब अव्याहत जीवनप्रवाह शरीरमें शुरू होता है। योगी लोग कहते हैं कि इच्छामरणकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्धि इससे प्राप्त होती है। योगी अपनी पूर्ण योगायुकी समाप्तितक अपनी इच्छासे जीवित रह सकता है। जो जो सत्पुरुष इच्छाशक्तिके चमत्कार करते रहते हैं, उनको इस सूर्यग्रंथिकी स्वाधीनतासे बलकी प्राप्ति होती है।

प्राणायामसे इस प्रकार प्रत्येक ग्रंथिके भेदके द्वारा बिलक्षण सिद्धि प्राप्त होती है। इस योगबलकी प्राप्तिके लिये पृष्ठवंशकी समसूत्रमें स्थिति चाहिये। पृष्ठवंशकी समसूत्रमें स्थिति होनेके लिये नित्यका ही अभ्यास चाहिये। चलना, बैठना, सोना, खडा होना आदि काम करनेके समय अपने पृष्ठवंशकी समसूत्रता रखनेका यत्न होनेसे एक वर्षमें पृष्ठवंश ठीक हो जाता है और पूर्व समयकी न्यूनता हट जाती है।

जो लोग योगाभ्यास करना नहीं चाहते उनको भी पृष्ठवंशके समसूत्रमें रखनेके अभ्याससे बडा आरोग्य प्राप्त हो सकता है। पृष्ठवंश ठीक प्रकार रखनेसे रोग स्वयं हट जाते हैं। इसलिये सर्वसाधारण जनताको भी इसका अभ्यास लाभदायक हो सकता है। जो प्राणायामादि करेंगे, उनको अधिक लाभ होगा, परंतु जो प्राणायाम नहीं करेंगे, उनको भी उक्त अभ्याससे बडा लाभ पहुंच सकता है। छोटे छोटे बच्चोंको जबतक वे स्वयं बैठना नहीं चाहते, जान बूझकर जबरदस्ती बिठलानेके प्रयत्नसे उनके पृष्ठवंशमें बिगाड होता है, जिसका परिणाम उनको आयुभरतक भुगतना पडता है। मातापिता इस बातका अवश्य ख्याल रखें। तथा अन्य पाठक अपने इष्टमित्रोंके बैठने, खडे रहने आदिके विषयमें इस योगदृष्टिसे विचार करें और अपने कर्तव्यको जान लें।

६. सब शक्तियोंसे योग

(१) कैवल्य— कैवल्य स्थिति प्राप्त करना योग-साधनकी अंतिम सिद्धि है। 'कैवल्य' का अर्थ 'केवल स्थिति' है। दूसरेका संबंध छोडना और अपने ही बलसे स्वयं स्वावलंबनपूर्वक रहना तथा केवल अपनी शक्तिका ही अनुभव लेना, इस अवस्थामें होता है। साधारण स्थितिमें मनुष्य सब सुखोंके लिये दूसरोंपर निर्भर रहता है। जहां दूसरेका आश्रय करना होता है, वहां पराधीनता है और जहां पराधीनता है, वहां अवश्य दुःख होना ही है। इसलिये पूर्ण स्वातंत्र्यका अनुभव योगसाधनसे होता है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीन शरीरोंके आश्रयसे क्रमशः जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थाओंका अनुभव प्रत्येक जीव ले रहा है। अर्थात् ये तीनों अवस्थाएं जीवको शरीरके आश्रयसे प्राप्त होती हैं, इसलिये इनमें पराधीनता है और पराधीनताके कारण इन तीनों अवस्थामें सुखके साथ साथ अनिच्छित दुःखकी प्राप्ति भी होती है। इसलिये इन तीनों शरीरोंके विना अपनी निज अवस्थाका अनुभव लेना और वहांके निज स्वातंत्र्यका पूर्ण आनंद प्राप्त करना हरएक जीवका परम अभीष्ट होना स्वाभाविक ही है। इस अभीष्टके साधनका नाम योगसाधन है। कैवल्य अवस्था अंतिम ध्येय है, अर्थात् पूर्ण स्वातत्र्य ही अंतिम ध्येय है। इसको "निरालंब अवस्था" भी कहते हैं। किसी अन्यका अवलंबन इस अवस्थामें करना नहीं होता है। परंतु आत्मा अपने ही निज रूपमें स्वतंत्रताका अनुभव करता रहता है। इसको 'आत्मयोग' कई विद्वान् इसलिये कहते हैं, कि इस अवस्थामें सर्वव्यापक परम आत्मतत्वका शुद्ध संबंध होनेसे इस अवस्थामें आत्माका परमात्माके साथ योग होता है। परंतु यह बात अंतिम अवस्थाकी होनेके कारण इस अवस्थाके विषयमें हम कुछ भी लिख नहीं सकते। स्वानुभव होनेके विना लिखना योग्य भी नहीं है। जो भाव केवल तर्कसे तथा ग्रंथप्रमाणसे जाना जा सकता है, वह ऊपर दिया ही है। उन्नति चाहनेवाले पाठक इस अंतिम अवस्थाके विषयमें प्रश्न पूछते रहते हैं, इसलिये यहां उनको इतना ही निवेदन है कि स श्रेष्ठतम भूमिकाका अनुभवज्ञान यहां किसीको नहीं है। इसलिये उनके प्रश्नोंका उचित उत्तर दिया ही नहीं जा सकता। जब कभी वैसा सुयोग आ जायगा, उस समय देखा जायगा। तबतक हम सब मिलकर नीचली श्रेणियोंमें ही रहकर अपने अपने अनुभवकी बातें करेंगे और परस्परकी सहायतासे आपना अपना मार्ग आक्रमण करेंगे।

(२) सुषुप्तियोग— पूर्वोक्त 'आत्मयोग किंवा तुर्यायोग' का अनुभव जिनको नहीं है, उनको सुषुप्ति अर्थात् गाढ निद्राका तो अनुभव है। सब प्राणिमात्रको इस सुषुप्तिका अनुभव है। इस सुषुप्तिसे सब निचेकी अवस्थाओंका सबको अनुभव है। इसलिये इन अवस्थाओंका उपयोग योगसाधनकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दृष्टिसे करना हरएकका कर्तव्य है। इनमेंसे हरएक अवस्थामें जिस रीतिसे योगसाधन किया जा सकता है, उसका संक्षेपसे इस लेखमें विवरण करना है। हमको जितनी अवस्थाएं प्राप्त हैं, उन सबमें सुषुप्ति अवस्था एक प्रकारसे ब्रह्म-रूपताकी अवस्था ही है। सुषुप्ति समाधि और मुक्तिमें ब्रह्मरूपता होती है। इस कथनपर पाठक श्रद्धा रखें और सुषुप्तिको ब्रह्मरूपावस्था समझें। अनायाससे इस अवस्थामें ब्रह्मानंदको प्राप्ति होती है। शरीरकी भयानक रोगकी अवस्था भी इस समय भूली जाती है। यदि पाठक इस अवस्थाके अनुभवका विचार करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि आत्माका शरीरसे भिन्नत्व इस अवस्थाके विचारसे ज्ञात हो सकता है। निद्रा जिस प्रकार आती है, यदि उस संधि अवस्थाका अनुभव लेनेका पाठक यत्न करेंगे, तो एक वर्षके अंदर उनको स्वयं अनुभव होगा कि उनका आत्मा शरीरसे भिन्न है। फिर इस विषयमें कोई शंका रहेगी ही नहीं। जागृतिकी समाप्ति और निद्राका प्रारंभ इस संधिसमयमें जो विचार मनमें रहता है, वही पुनः जागृत होनेतक स्थिर रहता है। इतना ही नहीं परंतु वह अपने स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरोंमें कार्य करता रहता है। इस शक्तिका पाठक उपयोग कर सकते हैं। उक्त संधिसमयमें प्रतिदिन बुरा भला विचार रहता ही है। अर्थात् बुरे भले विचारके अनुसार शरीरपर बुरा भला परिणाम भी होता रहता है। इसलिये उक्त संधिसमयमें शुभ विचार ही स्थिर करनेका यत्न करना अत्यंत आवश्यक है। जिस समय शरीरमें कोई बीमारी रहती है, उस समय सोनेके पूर्व यदि पूर्ण आरोग्यका विचार मनमें स्थिर करनेका यत्न किया जायगा और 'मैं बीमार नहीं हूं' इस आरोग्य-मय सुविचारके साथ यदि गाढ निद्रा आ जायगी, तो दूसरे दिन जागृतिके साथ ही पूर्व दिनकी बीमारी दूर होनेका अनुभव होगा। 'मन ही अमृत है' इसलिये सुविचारके साथ मन आरोग्य स्थापन कर सकता है। सुषुप्तिमें सुविचारकी स्थापना करनेका नाम ही सुषुप्तियोग है। जो बात ऊपर कही है, उसका पाठक भी अनुभव ले सकते हैं। संधिसमयके विचारोंपर अपना स्वत्व रखनेके लिये बहुत अभ्यास चाहिये। परंतु इसका बहुत प्रकारसे अनुभव लिया है और कइयोंके शरीरोंपर यह बात अजमाई है। इसलिये जो पाठक निश्चयसे प्रयत्न करेंगे, वे भी इस बातका बिना संदेह अनुभव कर सकते हैं। इस संधिसमयमें शुभ विचारको स्थिर रखनेका सुलभ उपाय यही है कि उत्तमसे उत्तम मंत्रको अर्थज्ञानपूर्वक जपते जपते सो जानेका यत्न करना। इस प्रकार यत्न करते करते अनुभव होगा कि दूसरे दिन प्रातःकाल वही मंत्र आप ही आप मनमें खडा रहता है। जब ऐसा होगा तब आप समझिये कि उक्त मंत्रका विचार रातभर आपके मनमें स्थिर रहा था। अनुभवके लिये आप आरोग्यवर्धक अथवा बलवर्धक मंत्र लीजिये और प्रतिदिन उसी एक मंत्रका जप कीजिये। यह जप बिस्तरेपर सोते सोते ही करना चाहिये और साथ साथ जहांतक हो सके, वहांतक किसी अन्य अवस्थाका ध्यान भी नहीं करना चाहिये। कोई अन्य सुविचार अथवा किसी सत्पुरुषका जीवन भी आप इस समय चिन्तनके लिये ले सकते हैं। इस प्रकार करनेके जो अन्य फल हैं, उनका विचार किसी अन्य समय किया जायगा। इस एक बातके अनुभवसे पाठक अपने मनकी शक्तिका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और थोडे ही प्रयत्नसे यह बात साध्य हो सकती है।

(३) स्वप्नयोग— पूर्वोक्त सुषुप्तियोगके साथ ही स्वप्नयोगका अत्यंत निकट संबंध है। साधरण अवस्थामें स्वप्नोंपर हमारी इच्छाका परिणाम नहीं होता, मनमाने स्वप्न होते रहते हैं। परंतु स्वप्नोंके दृश्योंसे मनकी अच्छी अथवा बुरी अवस्थाका पता लग सकता है। जब स्वप्न अच्छे आते होंगे, उस समय समझिये कि मन अच्छे विचारमें ही रम रहा है। परंतु जब स्वप्न अश्लील और बुरे ही आते ह, उस समय समझिये कि आपके मनमें कुविचार अवश्य आते हैं। दूसरे लोग आपको अच्छा समझते हैं अथवा बुरा समझते हैं, इस बातसे आपका अच्छा अथवा बुरा होना निश्चित नहीं हो सकता, परंतु आपके स्वप्नोंसे आप अपनी परीक्षा कर सकते हैं। स्वप्नमें आप अपने असली मनके स्वरूपमें रहते हैं। जैसे वास्तविक आपके विचार होते हैं, वैसे आपके सपने होते हैं। इसलिये सुविचार करनेसे स्वप्नयोग सिद्ध होता है। यदि आप सदा ही अच्छे विचार मनमें रखेंगे, अच्छे विचार सुनेंगे; अच्छे विचारोंके पुस्तक पढेंगे; तात्पर्य अपना मन अच्छे विचारोंसे परिपूर्ण रखेंगे तो आपको कभी बुरा स्वप्न नहीं आ सकता। योगसाधनद्वारा यदि आपको अपनी मानसिक शक्ति बढानेकी सदिच्छा है, तो आपको उक्त प्रकार अवश्य ही अभ्यास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करना चाहिये। प्रत्येक दिन निद्राके प्रारंभमें और अंतमें प्रत्येक मनुष्य स्वप्नका अनुभव करता ही है। बीचमें भी स्वप्न दिखाई देते हैं। परंतु बहुत थोडे स्वप्नोंका स्मरण होता है। जिनका स्मरण होता है, उनका ही विचार करना है। इसके अभ्यासके लिये सुविचार–साधनका प्रति समय आपको ख्याल रखना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त आप अपनी इच्छानुसार अपने लिए एक आदर्श पुरुष मनमें धारण कीजिये। यदि ब्रह्मचर्यपालनकी इच्छा हो, तो भीष्मपितामहकी ओर ध्यान रखिये, दृढव्रत, सत्यप्रिय होना है, तो श्रीरामचंद्रकी कल्पना जागृत रखिये, अथवा इसी प्रकार बलवान् बनना हो तो बलभीमका स्मरण कीजिये और इनके चरित्रोंमें जो जो मुख्य उच्च बात होगी उसका मनमें ऐसा निदिध्यास कीजिये कि उसका अनुभव आपको स्वप्नमें बारंबार आ जावे। अपने आपको वैसा बनानेका यत्न कीजिये और जो गुण इस प्रकार आप अपने आपमें धारण करना चाहते हैं, उस सद्गुणकी पराकाष्ठा परमात्मामें है, ऐसा समझकर उस गुणसे युक्त परमात्मा आपका परम आदर्श है, इस बातको पूर्णतासे मनमें धारण कीजिये। इस प्रकार करनेसे आपके स्वप्न भी उसी गुणसे युक्त होंगे। जब ऐसा होगा, तब आप समझिये कि स्वप्न-योगमें आपको सफलता होने लगी है। जो बात यहां लिखी है वह कोई अशक्य नहीं है, इसलिये हरएक मनुष्य पांच छः मासमें इसका कुछ न कुछ अनुभव ले सकता है। अपने सूक्ष्म देहको परिशुद्ध करनेके लिये इस योगका अभ्यास करनेकी अत्यंत आवश्यकता है। इसलिये पाठक यथावकाश इसको करते रहेंगे, तो उनको अवश्य ही लाभ होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

(४) बुद्धियोग– तर्कवितर्कसे परे श्रद्धाभक्तिसे युक्त अपनी परिशुद्ध निश्चयात्मक ज्ञानधारक शक्तिका नाम बुद्धि है, अथवा बुद्धिका यही अर्थ यहां अभीष्ट है। जो बलवती विश्वासपूर्वक निश्चयात्मक धारणा होती है, वही बुद्धि यहां अभिप्रेत है। संशयित मन ही सदा घात करता है। निश्चयात्मक दृढ भावनामय श्रद्धायुक्त बुद्धि ही उन्नतिकी साधक है। जो योगसाधनकी विलक्षण सिद्धियां होतीं हैं, वे सब इस बुद्धियोगसे होती हैं। श्रद्धाभक्ति इसमें विशेषता रखती है। श्रद्धासे, तर्कके विना जो भावना मनमें स्थिर होती है, वह फलवती होती है, यह योगका सिद्धांत है। परमेश्वरके विषयमें अटल विश्वासमय श्रद्धा मनमें स्थिर रखनेका अभ्यास जिस रीतिसे आप कर सकते हैं, उस रीतिसे आप कीजिये। इतनी परमात्माविषयक श्रद्धा आपके मनमें उत्पन्न होवे कि जो दूसरोंके तर्कवितर्कसे हटने न पावे। आपके दृढ अभ्याससे यह बात कालांतरमें सिद्ध हो सकती है। यद्यपि आप समझते होंगे कि आप आस्तिक हैं और आपका परमेश्वरपर भरोसा है, परंतु तर्कसे मानी हुई बात यहां कामकी नहीं है। अपना अस्तित्व जिस प्रकार आप विना प्रमाणके जानते और मानते हैं, उसी प्रकार प्रमाणांतरके विना सब शुभ गुणोंकी पराकाष्ठाका आधार सर्वमंगलमय परमात्मा है, ऐसा तर्कहीन पूरा विश्वास मनमें स्थिर रखनेका यत्न कीजिये। इस बातपर योगकी सिद्धि निर्भर है। इसलिये कोई साधक इस विषयमें संदेह न धारण करे। जो तर्कसे ही सब बातें जानना चाहते हैं उनको उचित है कि वे इस विषयमें प्रथम जितना तर्क करना है, कर लें। जब तर्ककी गति कुंठित हो जायगी, तब उसके परे ही परमात्माका अनुभव होगा। जबतक तर्ककी गडबड चलती है, तबतक बुद्धियोग साध्य होता ही नहीं, क्योंकि केवल श्रद्धासे ही इसकी सिद्धि होती है। इसलिये जो पाठक इस बुद्धियोगमें प्रगति करना चाहते हैं, उनको उचित है कि वे अपने अंदर निर्वितर्क श्रद्धा उत्पन्न करनेका यत्न करें। प्रकृतिके भेदसे इसके उपाय भी भिन्न होंगे और पाठक अपने ज्ञानके अनुसार इसका उपाय कर सकते हैं। सर्वसामान्य उपाय इतना ही है कि परमात्माको पूर्ण मंगलमय समझकर और उसको सर्वत्र देखनेका अभ्यास करते हुए सर्वत्र उसका मंगल कार्य ही देखनेका यत्न करना चाहिये। जब परमात्म-विषयक उक्त श्रद्धा होगी, तब आपके आनंदको पारावार ही नहीं रहेगा। परंतु यह निर्वितर्क श्रद्धा मनमें स्थिर करनेका अहर्निश प्रयत्न करना चाहिये, तभी इसकी सिद्धि हो सकती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२३५ य इन्द्र शुष्मो मघवन् ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।
त्वं हि दृळ्हा मघवन् विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥ २ ॥
२३६ इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ ३ ॥
२३७ नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ॥ ४ ॥
२३८ नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय ।
गोमदश्वावद् रथवद् व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

अर्थ— [२३५] हे (पुरुहूत मघवन् इंद्र) बहुतों द्वारा प्रार्थित धनवान् इंद्र ! (ते यः शुष्मः अस्ति) तेरा जो बल है उसको तू (सखिभ्यः नृभ्यः शिक्ष) एक विचारसे कार्य करनेवाले मनुष्योंको दे । हे (मघवन्) धनवान् इंद्र! (त्वं हि दृळहा) तू सुदृढ किलोंको भी तोड देता है इस लिये वह तू (विचेताः परिवृतं राधः) विशेष ज्ञानी गुप्त धनको भी (न अपवृधि) निःसंदेह हमारे लिये प्रकट कर ॥ २ ॥

[२३६] (जगतः चर्षणीनां इन्द्रः राजा) जंगम और मानव इन सबका इन्द्र ही एकमात्र राजा है । (अधि क्षमि यत् विषुरूपं अस्ति) इस पृथिवीपर जो नाना प्रकारके रूपोंवाला जो भी कुछ है, उसका भी वही राजा है । (ततः दाशुषे वसूनि ददाति) इस लिये वह दाताको धन देता है । वह (उपस्तुतः चित्) स्तुति करनेपर (राधः अर्वाक् चोदत्) धनको हमारे समीप प्रेरित करता है ॥ ३ ॥

[२३७] (मघवा दानः इन्द्रः) धनवान् दाता इन्द्र (नः सहूती नः ऊती वाजं नूचित् नियमते) हमारे बुलानेपर हमारी सुरक्षाके लिये शीघ्र ही हमें बल देता रहे । (यस्य अनूना अभि वीता दक्षिणा) जिसका संपूर्ण प्राप्त दान (सखिभ्यः नृभ्यः वामं पीपाय) एक विचारसे कार्य करनेवाले नेताओंके लिये धन दुहता है, देता है ॥ ४ ॥

[२३८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः राये नु वरिवः कृधि) हमारे ऐश्वर्यवृद्धिके लिये तू सत्वर ही धन दे, धन निर्माण कर । हम (ते मनः मघाय आ ववृत्याम) तेरे मनको धनके दानके लिये प्रवृत्त करते हैं। (गोमत् अश्ववत् रथवत् व्यन्तः) गौवों, घोडों और रथोंके साथ रहनेवाला धन तुम्हारे पास है, उसका तू दाता है (स्वस्तिभिः यूयं सदा नः पात) अपने कल्याणकारक साधनोंसे तुम सदा हमारी सुरक्षा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जो सामर्थ्य तुझमें है, उसे तू अपने समान विचारवाले नेताओंको प्रदान कर । तू मनुष्योंको संगठित कर । तू जिस सामर्थ्यसे शत्रुओंके किलोंको तोडता है, उस अपने सामर्थ्यको ज्ञानियोंके लिए प्रदान कर ॥ २ ॥

इस पृथ्वीपर जितने कुरूप या सुरूप पदार्थ और मनुष्य हैं, उन सबमें वह प्रभु इन्द्र वास करता है । सभी स्थावर और जंगम जगत्का भी वही एकमात्र स्वामी है। वह दाताके लिए अनेक तरहके धन देता है । जो उदार चरित हैं, उन्हें प्रभु हरतरहकी समृद्धि प्रदान करता है ॥ ३ ॥

दाता धनपति हमारी प्रार्थनापर हम सबकी सुरक्षा करनेके लिए हमें बल प्रदान करे अर्थात् धनपति अपनी सुरक्षाके लिए वीरोंको धन दे और उस धनसे वे वीर संगठन करके उस धनपतिकी रक्षा करें ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हमारे ऐश्वर्योंकी अभिवृद्धि कर । हमें श्रेष्ठ धन दे । श्रेष्ठ साधनोंसे प्राप्त हुआ धन ही श्रेष्ठ धन कहाता है । ऐसे धनको प्राप्त करनेके लिए हम तेरे मनको अपनी ओर आकर्षित करें ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[२८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२३९ ब्रह्मा॑ ण इन्द्रोप॑ याहि वि॒द्वा॒न॒र्वाञ्च॑स्ते॒ हर॑यः सन्तु यु॒क्ताः ।
विश्वे॑ चि॒द्धि त्वा॑ वि॒हव॑न्त॒ मर्ता॑ अ॒स्माक॒मिच्छृ॑णुहि विश्वमिन्व ॥ १ ॥

२४० हवं॑ त इन्द्र महि॒मा व्या॑न॒ड् ब्रह्म॒ यत् पासि॑ शवसि॒न्नृषी॑णाम् ।
आ यद् वज्रं॑ दधि॒षे हस्त॑ उग्र घो॒रः सन् क्रत्वा॑ जनि॒ष्ठा अषा॑ळ्हः ॥ २ ॥

२४१ तव॒ प्रणी॑तीन्द्र॒ जोहु॑वाना॒न् त्सं यन्नॄन् न रोद॑सी नि॒नेथ॑ ।
म॒हे क्ष॒त्राय॒ शव॑से॒ हि ज॒ज्ञे ऽतू॑तुजिं चि॒त् तूतु॑जिरशिश्नत् ॥ ३ ॥

---

[२८]

अर्थ— [२३९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (विद्वान् नः ब्रह्म उपयाहि) सब जाननेवाला तू हमारे स्तोत्र पाठके पास आ । (ते हरयः अर्वाचः युक्ताः सन्तु) तेरे घोडे हमारी ओर आनेके लिये ही जोते हुए हों । हे (विश्वमिन्व) विश्वको संतोष देनेवाले वीर ! (त्वा विश्वे मर्ताः चित् इ विहवन्त) तुझे सारे मनुष्य पृथक् पृथक् बुलाते हैं । तथापि तू (अस्माकं इवं श्रृणुहि) हमारी प्रार्थना सुन ॥ १ ॥

[२४०] हे (शवलिन् इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (यत् ऋषीणां ब्रह्म पासि) जब ऋषियोंका स्तोत्र तुम सुरक्षित रखते हो, तब (ते महिमा वि आनट्) तुम्हारी महिमा उससे व्याप्त होती हैं । हे (उग्र) शूर वीर ! (यत् हस्ते वज्रं आ दधिषे) जब तुम हाथसें वज्रको धारण करते हो, तब (घोरः सन् क्रत्वा अषाळ्हः जनिष्ठाः) तुम भयंकर शूर बनकर अपने युद्धरूप कर्मसे अपराजित होते हो ॥ २ ॥

[२४१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् तव प्रणीती जोहुवानान्) जब तुम अपनी नेतृत्वकी पद्धतिके अनुसार स्तोत्र पाठ करनेवाले (नॄन् रोदसी सं निनेथ) मानवोंको द्युलोकसे पृथिवीतक सुप्रतिष्ठित करते हो, तब तुम (महे क्षत्राय शवसे जज्ञे) महान् क्षात्र कर्म तथा बलके कार्य करनेके लिये ही उत्पन्न हुए हो (हि) यह यह निःसंदेह ही है । (अतूतुजिं तूतुजिः चित् अशिश्नत) अदाताको दाता पराजित करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू सर्वज्ञ होनेके कारण हमारे मनोरथोंको जान और उनको पूरा करनेके लिए हमारे पास आ । तू सब विश्वको तृप्त करके उसे सन्तोष प्रदान करता है । इस लिए संसारके सभी प्राणी तुझे बुलाते हैं, तो भी तू हमारी प्रार्थना ध्यान देकर सुन ॥ १ ॥

इन्द्र अपनी महिमासे ऋषियोंके काव्योंकी सुरक्षा करता है और अपने हाथोंसें वज्र धारण करके दृढतम शत्रुओंको भी पराजित करता है । जिन काव्योंमें वीरोंकी वीरताका वर्णन है, वे काव्य सुरक्षित रहें । ऐसे वीर शस्त्रास्त्रोंको धारण करके ऐसा पराक्रम दिखाएं कि वे पराक्रम शत्रुओंके लिए असह्य हो जाएं ॥ २ ॥

जो प्रभुकी आज्ञाके अनुकूल होकर चलता है, उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है । ऐसे प्रतिष्ठित वीरपुरुष बल और शौर्यके महान् कार्य करनेके लिए ही उत्पन्न होते हैं । उदार और कंजूसोंमें कंजूस हमेशा पीछे ही रह जाता है । विश्वमें दाताका यश फैलता है और कंजूस अप्रतिष्ठित होता है ॥ ३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२४२ एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।
प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात् ॥ ४ ॥

२४३ वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[२९]

(ऋषिः- ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२४४ अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।
पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः ॥ १ ॥

२४५ ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥ २ ॥

अर्थ— [२४२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दुर्मित्रासः क्षितयः पवन्ते) जो दुष्ट मनुष्य हम लोगोंपर हमला करते हैं, (एभिः अहभिः नः दशस्य) उनको इन अच्छे दिनोंके साथ हमारे अधीन करो । (अनेनाः मायी वरुणः) निष्पाप कुशल वरुण (यत् अनृतं प्रति चष्टे) जो असत्य हमारे अन्दर देखेगा वह (द्विता अव सात्) द्विधा होकर हमसे दूर हो जाय ॥ ४ ॥

[२४३] (यत् महः राधसः रायः नः ददत्) जो बडे सिद्धिप्रद धनका हमें दान करता है (यः अर्चतः ब्रह्मकृतिं अविष्ठः) जो स्तोताके स्तोत्ररूप कृतिका संरक्षण करता है (एनं मघवानं इन्द्रं इत् वोचेम) उस धनवान् इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी सुरक्षा उत्तम कल्याणोंके साथ करो ॥ ५ ॥

[२९]

[२४४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तुभ्यं अयं सोमः सुन्वे) तेरे लिये यह सोमरस निकालते हैं । हे (हरिवः) उत्तम घोडे रथको जोतनेवाले इन्द्र ! (तदोकाः तु आ प्रयाहि) उस स्थानपर तू सत्वर जा । (अस्य सुषुतस्य चारोः तु पिब) इस उत्तम सुन्दर रसका पान कर । हे (मघवन्) धनवान् ! (इयानः मघानि ददः) उपासना करनेपर धनोंका प्रदान कर ॥ १ ॥

[२४५] हे (ब्रह्मन् वीर) ज्ञानी वीर ! (ब्रह्मतिं जुषाणः) ज्ञानपूर्वककी हुई इस कृतिका-स्तुतिका सेवन करके (अर्वाचीनः हरिभिः तूयं याहि) हमारी ओर मुख करके घोडोंके साथ सत्वर हमारे पास आ । (अस्मिन् सवने सु मादयस्व) इस सोमसेवनसे आनंदित हो । (नः इमा ब्रह्माणि उप श्रृवणः) और हमारे ये स्तोत्र श्रवण कर ॥ २ ॥

भावार्थ— जब सज्जनोंपर दुष्टजन मित्रताका छत्ररूप बनाकर आक्रमण करें, तब उन दुष्टोंका नियंत्रण करना चाहिए और सज्जनोंको उत्तम अवसर प्रदान करना चाहिए । इस नियमनका अधिकारी निष्पाप, उत्तम कर्म करनेसें प्रवीण और श्रेष्ठ हो । वह जो असत्य देखे, उसे वह दूर करे ॥ ४ ॥

जो अनेक तरहकी सिद्धियां प्रदान करनेवाले धन हमें देता है, जो स्तोताके स्तोत्ररूप काव्योंकी सुरक्षा करता है, उस धनवान् इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं । इन्द्रकी कृपासे अन्य देव भी हमारी हर तरहसे रक्षा करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र! तेरे लिए यह सोमरस निचोडा गया है। इस लिए सोम निचोडनेके स्थानपर तू शीघ्र जा । और उस उत्तम रसका पान कर तथा प्रसन्न होकर उपासकको उत्तम धन प्रदान कर ॥ १ ॥

+

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२४६ का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन् दाशेम ।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाऽधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥ ३ ॥
२४७ उतो घा ते पुरुष्या३ इदासन् येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम् ।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥ ४ ॥
२४८ वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[३०]

(ऋषिः — ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवताः — इन्द्रः । छन्दः — त्रिष्टुप् ।)

२४९ आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन् भवा वृध इन्द्र रायो अस्य ।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥ १ ॥

अर्थ— [२४६] (सूक्तैः ते अरंकृतिः का अस्ति) इन सूक्तोंसे तुम्हारी शोभा कैसी हो रही है। हे (मघवन्) धनपते ! (कदा ते नूनं दाशेम) कब तुझे हम सचमुच प्रसन्न करें ? (त्वाया विश्वा मतीः आततने) तेरे लिये ही ये स्तुतियां मैं करता हूं। हे इन्द्र ! (अध मे इमा हवा शृणवः) और मेरे ये स्तोत्र श्रवण कर ॥ ३ ॥

[२४७] हे (मघवन्) धनपते ! (उत येषां पूर्वेषां ऋषीणां) और जिन प्राचीन ऋषीयोंकी स्तुतियां (अशृणोः) तुमने सुनी थीं, (ते पुरुष्याः इव् आसन्) वे ऋषि मनुष्योंका हित करनेवाले थे। (अध अहं त्वा जोहवीमि) अतः मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं, हे इन्द्र ! (त्वं नः पिता इव प्रमतिः असि) तुम हमारे पिता जैसे उत्तम बुद्धिदाता हो ॥ ४ ॥

[२४८] (यत् महः राधसः रायः नः ददत्) जो बडे सिद्धिप्रद धनका दान हमें करता है, (यः अर्चतः ब्रह्मकृतिं अविष्ठः) जो स्तोताके स्तोत्ररूप कृतिका संरक्षण करता है, (एनं माघवानं इन्द्रं इत् वोचेम) उस धनवान् इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं, (यूयं सदा न स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी सुरक्षा उत्तम कल्याणोंसे करो ॥ ५ ॥

[३०]

[२४९] हे (देव शुष्मिन् इन्द्र) प्रकाशमान् बलशाली इन्द्र ! (शवसा नः आयाहि) बलके साथ हमारे पास आ। (अस्य रायः वृधः भव) इस धनको बढानेवाला बन। हे (नृपते सुवज्र) मनुष्योंके पालनकर्ता उत्तम वज्रधारी इन्द्र ! (महे नृम्ण) बडे बलको बढानेवाला बन। हे (शूर) शूर ! (महि क्षत्राय पौंस्याय) बडे क्षात्र सामर्थ्य और विशाल पौरुषके बढानेवाले बनो ॥ १ ॥

भावार्थ— हे ज्ञानी वीर इन्द्र ! ज्ञानपूर्वक की गई इस स्तुतिका सेवन करके अपने घोडोंपर बैठकरके हमारी ओर आ। तू इस सोमयागसे आनन्दित हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हमारे द्वारा की गई इन स्तुतियोंसे तेरी शोभा बढती हैं, इस लिए तू हमारे द्वारा की गई इन स्तुतियोंको सुन ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! प्राचीनकालमें जिन ऋषियोंकी स्तुति तुमने सुनी, वे ऋषि मनुष्योंका हित करनेवाले थे। मैं भी तेरी स्तुति करता हूँ, क्योंकि तू ही हमारा पिता और हमें उत्तम बुद्धिको देनेवाला है ॥ ४ ॥

जो अनेक तरहकी सिद्धियां प्रदान करनेवाले धन हमें देता है, जो स्तोताके स्तोत्ररूप काव्योंकी सुरक्षा करता है, उस धनवान् इन्द्रकी हम सुरक्षा करते हैं। उस इन्द्रकी कृपासे अन्य देव भी हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२५० हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु । ॥ २ ॥
२५१ अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान् दधो यत् केतुमुपमं समत्सु ।
न्य१ग्निः सीदुदसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥ ३ ॥
२५२ वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मघानि ।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त ॥ ४ ॥
२५३ वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

अर्थ— [२५०] (हव्यं त्वा विवाचि ऊं हवन्ते) प्रार्थना करने योग्य ऐसे तुम्हारी प्रार्थना विवादयुद्धमें लोग करते हैं । (शूराः सूर्यस्य सातौ तनुषु) शूर लोग सूर्यकी प्राप्ति दीर्घ कालतक शरीरोंमें हो अर्थात् सूर्यसे शरीरमें दीर्घायु प्राप्त हो इस लिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । (विश्वेषु जनेषु त्वं सेन्यः) सब लोगोंमें तुम ही सेनाके लिये सुयोग्य संचालक हो । (त्वं सुहन्तु वृत्राणि रन्धय) तू उत्तम नाशक शस्त्रसे घेरनेवाले शत्रुओंका विनाश कर ॥ २ ॥

[२५१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् अहा सुदिना व्युच्छान्) जब दिन अच्छे आयेंगे, (यत् समत्सु केतं उपमं दधः) जब युद्धोंके संबंधका ज्ञान हमें तुम दोगे, हमें युद्धका कौशल प्राप्त होगा, तब (असुरः होता अग्निः) समर्थ और विबुधोंको बुलानेवाला अग्नि (सुभगाय) हमारे सौभाग्य वर्धनके लिये (देवान् हुवानः) विबुधोंको बुलाता हुआ, (अत्र नि सीदत्) यहां इस यज्ञमें प्रदीप्त होकर बैठे ॥ ३ ॥

[२५२] हे (शूर इन्द्र) शूर इन्द्र देव ! (ते वयं) तुम्हारे ही हम हैं । (ये मघानि ददतः स्तवंतः) जो धनका दान करते और तुम्हारी स्तुति करते हैं उन (सूरिभ्यः उपमं वरूथं यच्छ) विद्वानोंके लिये श्रेष्ठ धन दे दो । वे (स्वाभुवः जरणां अश्नवंत) उत्तम ऐश्वर्यवाले होकर वृद्धावस्थाका भोग करें ॥ ४ ॥

[२५३] (यत् महः राधसः रायः नः ददत्) जो बडे सिद्धिप्रद धनका हमें दान करता है, (यः अर्चतः ब्रह्मकृतिं अविष्ठः) जो स्तोताके स्तोत्ररूप कृतिका संरक्षण करता है, (एनं मघवानं इन्द्रं) इस धनवान् इन्द्रकी हम (इत् वोचेम) प्रशंसा करते हैं । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी सुरक्षा उत्तम कल्याणोंके साथ करो ॥ ५ ॥

भावार्थ— प्रकाशमान् तेजस्वी, बलवान् उत्तम शस्त्रधारी, शूरवीर और शत्रुनाशक ऐसा मनुष्य ही मनुष्योंका राजा हो । राजा और राजपुरुषोंमें ये गुण हों । यह राजा अपनी शक्तिपूर्वक अपने कर्तव्य कर्मोंको करता रहे तथा अपने राष्ट्रके ऐश्वर्यको बढावे । अपने राष्ट्रके सामर्थ्य, बल तथा पौरुषको बढावे ॥ १ ॥

युद्धके समय शूर पुरुषोंकी सहायता करनी चाहिए । मनुष्य अपने शरीरके सामर्थ्यको बढानेके लिए सूर्यकिरणोंका आश्रय लेते हैं । सूर्यकिरणोंका स्नान करनेसे शारीरिक शक्ति बढती है । जो शूरवीर तरुण हों वे राष्ट्रकी रक्षाके लिए सैन्यमें भरती हों और उनमें भी जो विशेष शूरवीर हों वे सेनाका संचालन करें ॥ २ ॥

प्रभु जब मनुष्योंको ज्ञान प्रदान करेगा, ज्ञानियोंको प्रेरणा देनेवाला अग्नि जब सौभाग्यको बढानेके लिए ज्ञानियोंको मनुष्योंके पास भेजकर उन्हें तेजस्वी बनायेगा, वही दिन मनुष्योंके लिए सर्वश्रेष्ठ दिन होगा ॥ ३ ॥

मनुष्य यह समझें कि वे सब उस प्रभुके औरस पुत्र हैं, इस लिए वे अन्य असहाय मनुष्योंकी धनादिसे सहायता करें और ईश्वरकी स्तुति करें । हे प्रभो ! ज्ञानीयोंको धन दो और वे ज्ञानी समृद्ध और अतिवृद्ध होकर दीर्घ आयुतक जीवनका उपभोग करें ॥ ४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[३१]

ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री, १०-१२ विराट् ।

२५४ प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥ १ ॥
२५५ शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चकृमा सत्यराधसे ॥ २ ॥
२५६ त्वं न इन्द्र वाजयु स्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥
२५७ वयमिन्द्र त्वायवो ऽभि प्र णोनुमो वृषन् । विद्धी त्व१स्य नो वसो ॥ ४ ॥
२५८ मा नो निदे च वक्तवे ऽर्यो रन्धीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥
२५९ त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥

---

[३१]

अर्थ— [२५४] हे (सखायः) हे मित्रो ! (वः हर्यश्वाय सोमपाव्ने) तुम उत्तम घोडोंवाले और सोम पीनेवाले (इन्द्राय मादनं प्र गायत) इन्द्रके लिये आनन्दकारक काव्य गाओ ॥ १ ॥

[२५५] (उत) और (सुदानवे सत्यराधसे उक्थं) उत्तम दान देनेवाले और सत्य धन जिसका है ऐसे इन्द्रके लिये स्तोत्र (यथा नरः द्युक्षं) जैसे अन्य नेता तेजस्वी स्तोत्र गाते हैं, वैसा ही (शंस इत्) तुम भी कहो, और हम भी (चकृम) करेंगे ॥ २ ॥

[२५६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं नः वाजयुः) तू हमारे लिये धनकी अभिलाषा कर ! हमें धन देनेकी इच्छा कर । हे (शतक्रतो) सैंकडों प्रशस्त कर्म करनेवाले ! (त्वं गव्युः) तुम हमारे लिये गौओंकी कामना करो । हमें गौएं देनेकी इच्छा करो । हे (वसो) निवासकर्ता ! (त्वं हिरण्ययुः) तू हमारे लिये सुवर्णकी कामना कर ॥ ३ ॥

[२५७] हे (वृषन् इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (त्वायवः वयं अभि प्रणोनुमः) तेरी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम तुम्हारी स्तुति गाते हैं । हे (वसो) निवासकर्ता ! (अस्य नः विद्धि) इस हमारे स्तोत्रको तुम ध्यानसे सुनो ॥ ४ ॥

[२५८] (अर्यः वक्तवे निदे अराव्णे नः मा रन्धि) तू हमारा स्वामी है, हमको कठोर बोलनेवाले, निंदक, तथा कंजूसके अधीन मत रख । (मम क्रतुः त्वे अपि) मेरा यज्ञ तेरे पास पहुंचे ॥ ५ ॥

[२५९] हे (वृत्रहन्) शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्र ! (त्वं वर्म असि) तू हमारा कवच है । (स प्रथः) तू सर्वत्र संरक्षण करनेमें प्रसिद्ध है । तू (पुरो योधः च असि) सामनेसे युद्ध करनेवाला है । (त्वया युजा प्रति ब्रुवे) तेरी सहायतासे हम शत्रुको अच्छा उत्तर दें । उनका नाश कर सकें ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो अनेक तरहकी सिद्धियां प्रदान करनेवाले धन हमें देता है, जो स्तोताके स्तोत्ररूप काव्योंकी सुरक्षा करता है, उस धनवान् इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं । उस इन्द्रकी कृपासे अन्य देव भी हमारी हर तरहसे रक्षा करें ॥ ५ ॥

हे मित्रो ! तुम उत्तम घोडोंवाले और सोम पीनेवाले इन्द्रके प्रशंसाकारक काव्योंका गायन करो ॥ १ ॥

जो उत्तम रीतिसे दान देता है, उसीका धन सच्चा होता है । प्रभु सबको दान देकर सबका उत्तम रीतिसे पोषण करता है, इसलिए उसकी ही प्रशंसाके गीत गाने चाहिए ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तू हमें धन देनेकी इच्छा कर । हे अनेकों तरहके उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! तू हमें गायें भी प्रदान कर । तू हमें सोना देनेकी भी इच्छा कर ॥ ३ ॥

हे बलवान् इन्द्र ! तुझे प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति गाते हैं, इस हमारी स्तुतिको तू ध्यानसे सुन ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तू हमारा स्वामी है, इस लिए हम तुझसे प्रार्थना करते हैं कि तू हमें कभी भी ऐसे मनुष्योंके वशमें मत कर कि जो कठोर भाषण करनेवाले, निन्दा करनेवाले और कंजूस हों ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२६० महाँ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः । मम्नाते इन्द्र रोदसी ॥ ७ ॥
२६१ तं त्वा मरुत्वती परि भुवद् वाणी सयावरी । नक्षमाणा सह द्युभिः ॥ ८ ॥
२६२ ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन् दस्ममुप द्यवि । सं ते नमन्त कृष्टयः ॥ ९ ॥
२६३ प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ १० ॥
२६४ उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ ११ ॥

अर्थ— [२६०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (महान् असि) तू सबसे बडा है, (यस्य ते सहः) तेरे बलको (स्वधावरी, रोदसी अनु मम्नाते) अन्नवाली द्यावापृथिवी भी मानती है ॥ ७ ॥

[२६१] (तं त्वा सयावरी) तेरे साथ जानेवाली (द्युभिः सह नक्षमाणा) तेजोंके साथ फैलनेवाली (मरुत्वती वाणी) वीरों द्वाराकी स्तुति (परिभुवत्) तुझे स्वीकार करे । तेरी स्तुति सर्वत्र होती रहे ॥ ८ ॥

[२६२] (उपद्यवि त्वा दस्म) द्युलोकके समीप तुझ दर्शनीयके लिये (ऊर्ध्वासः इन्दवः भुवन्) ऊपर ऊपर चढनेवाले सोम सिद्ध हो रहे हैं । (कृष्टयः ते सं नमन्ते) और प्रजाएं तुम्हें नमन करती हैं ॥ ९ ॥

[२६३] (वः महीवृद्धे महे प्रभरध्वं) तुम धनका संवर्धन करनेवाले महान् वीर इन्द्रके लिये सोमरस भर दो । (प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं) विशेष ज्ञानवान् इंद्रके लिये उत्तम स्तुति करो । (चर्षणिप्राः पूर्वीः विशः प्र चर) प्रजाओंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले तुम प्रजाओंमें संचार कर ॥ १० ॥

[२६४] (अरुव्यचसे महिने इन्द्राय सुवृक्तिं) चारों ओर यशसे फैले और बडे इन्द्रके लिये स्तुति और (ब्रह्म विप्राः जयन्त) हविष्यान्न ज्ञानी लोग तैयार करते हैं । (तस्य व्रतानि धीराः न मिनन्ति) उसके संरक्षणादि व्रतोंका निषेध धीर पुरुष भी नहीं कर सकते ॥ ११ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र हर तरहसे रक्षा करनेके कार्यमें प्रसिद्ध है, इस लिए यह इन्द्र हम प्राणियोंका कवच ही है। इस कवचसे सुरक्षित होकर हम अपने शत्रुओंका नाश करें । राजा शत्रुओंका नाश करके प्रजाकी रक्षा करे । वह प्रजाके लिए कवचके समान हो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तू सबसे महान् है, तू सबसे अधिक बलशाली है । तेरे इस बलके आगे अन्न प्रदान करनेवाले द्यु और पृथिवीलोक भी नम्र होते हैं ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तेरे साथ जानेवाली, तेजोंके साथ फैलनेवाली वीरोंके द्वारा की गई स्तुति तुझे बलशाली बनाये ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! अत्यन्त सुन्दर ऐसे तेरे लिए उत्साह प्रदान करनेवाले सोमरस तैयार किए जा रहे हैं और उसके साथ ही प्रजायें नम्रतापूर्वक तेरी स्तुति गा रही हैं ॥ ९ ॥

धनका संवर्धन करनेवाले महान् वीरके लिए सोमरस देकर उसका पूरी तरह सत्कार करना चाहिए । विशेष ज्ञानी वीरकी प्रशंसा करनी चाहिए और प्रजाओंकी आवश्यकताओंकी तरफ ध्यान देनेवाला राजा प्रजाओंमें संचार करके उनकी आवश्यकताओंको जाने, उनकी व्यवस्थापर विचार करे ॥ १० ॥

सभी प्राणी उस प्रभुकी महिमाका गान करते हैं और सभी उसके नियमोंके अनुकूल होकर चलते है, क्योंकि ज्ञानी भी उस प्रभुके नियमोंका उल्लंघन नहीं कर सकते । तब साधरण प्राणियोंकी तो बात ही क्या ॥ ११ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२६५ इन्द्रं॒ वाणी॒रनु॑त्तमन्युमे॒व स॒त्रा राजा॑नं दधिरे॒ सह॑ध्यै ।
हर्य॑श्वाय बर्हया॒ समा॒पीन् ॥ १२ ॥

[३२]

ऋषिः- (१-२५) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, २६ पूर्वार्धर्चस्य शक्तिर्वासिष्ठो वा (शाट्यायने ब्राह्मणे), २६-२७ शक्तिर्वासिष्ठो वा (ताण्डके ब्राह्मणे)। देवता- इन्द्रः। छन्दः- प्रगाथः- (बृहती, सतोबृहती), ३ द्विपदा विराट्।

२६६ मो षु त्वा॑ वा॒घत॑श्च॒ना॒ऽऽरे अ॒स्मन्नि री॑रमन् ।
आ॒रात्ता॑च्चित् सध॒मादं॑ न॒ आ ग॑ही॒ह वा॒ सन्नुप॑ श्रुधि ॥ १ ॥
२६७ इ॒मे हि ते॑ ब्रह्म॒कृतः॑ सु॒ते स॒चा मधौ॒ न मक्ष॒ आस॑ते ।
इन्द्रे॒ कामं॑ जरि॒तारो॑ वसू॒यवो॒ रथे॒ न पाद॒मा द॑धुः ॥ २ ॥
२६८ रा॒यस्का॑मो॒ वज्र॑हस्तं सु॒दक्षि॑णं पु॒त्रो न पि॒तरं॑ हुवे ॥ ३ ॥

अर्थ— [२६५] (सत्रा राजानं अनुत्त-मन्युं) सब विश्वका राजा और जिसका उत्साह अप्रतिम हैं ऐसे (इन्द्रं वाणीः सहध्यै दधिरे) इन्द्रकी प्रशंसा अपना बल बढानेके लिये की जाती है। अतः (हर्यश्वाय आपीन् सं बर्हय) उत्तम घोडोंको जोतनेवाले इन्द्रकी स्तुति करनेके लिये अपने मित्रोंको उत्साहित कर ॥ १२ ॥

[३२]

[२६६] (त्वा वाघतः चन अस्मत् आरे) तेरी स्तुति करनेवाले ये स्तोता हमसे दूर (मो सु नि रीरमन्) न रमते रहें। (आरात्तात् चित् नः सधमादं आ गहि) दूरसे भी तू हमारे यज्ञगृहमें आ। (इह वा सन् उप श्रुधि) यहां रहकर हमारा स्तोत्रका श्रवण कर ॥ १ ॥

[२६७] (ते सुते इमे ब्रह्मकृतः हि) तुम्हारे लिये सोमरस निकालनेका कार्य चलनेके समय ये स्तोत्र पाठकर्ता गण (मधौ मक्ष न) शहदमें मधुमक्खियाँ बैठनेके समान (सचा आसते) साथ साथ बैठते हैं। (वसूयवो जरितारः) धन चाहनेवाले स्तोत्रपाठी (रथे न पादं) रथमें पांव रखनेके समान (इन्द्रे कामं आदधुः) इन्द्रमें अपनी इच्छाको रखते हैं ॥ २ ॥

[२६८] (पुत्रः पितरं न) पुत्र पिताको पूछता है उस तरह (रायस्कामः) धनकी कामना करनेवाला मैं (वज्रहस्तं सुदक्षिणं हुवे) वज्रधारी उत्तम दाता इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ— राजा सदा उत्साही हो, वह कभी दीन या निरुत्साही न हो। राजपुरुष भी ऐसे ही हों। इन्द्रकी स्तुतिका गान करनेसे बल बढानेके उपाय मनुष्योंको ज्ञात होंगे। इस प्रकार मनुष्य स्वयं भी उस प्रभुकी स्तुति करे और दूसरोंको भी उसकी स्तुति करनेकी प्रेरणा दे ताकि वे भी अपना बल बढा सकें ॥ १२ ॥

हे इन्द्र! तेरी स्तुति करनेवाले स्तोता हमसे दूर रहकर आनन्दित हों अर्थात् हम कोई ऐसा काम न करें कि वे हमसे दूर रहना चाहें। तू भी हमारे यज्ञगृहमें आकर हमारे द्वारा किए जानेवाले स्तोत्रोंका श्रवण कर ॥ १ ॥

जिस तरह छत्तेमें मधुमक्खियां बैठती हैं, उसी तरह ये स्तोता यज्ञमें संगठित होकर बैठते हैं। धन प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले इन्द्रमें ही अपने ध्यानको केन्द्रित करते हैं ॥ २ ॥

मनुष्य इन्द्रसे ही धन पानेकी इच्छा करे। जिस तरह पिताका धन पुत्रको प्राप्त होता है, उसी तरह इन्द्रसे मुझे धन मिले, क्योंकि वह मेरा पिता है और मैं उसका पुत्र हूं ॥ ३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२६९ इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ ४ ॥
२७० श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद् गिरः ।
सद्यश्चिद् यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् ॥ ५ ॥
२७१ स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः ।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन् त्सुनोत्या च धावति ॥ ६ ॥
२७२ भवा वरूथं मघवन् मघोनां यत् समजासि शर्धतः ।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [२६९] हे (वज्रहस्त) वज्र हाथमें लेनेवाले इन्द्र ! (दध्याशिरः इमे सोमासः) दहीसे मिश्रित ये सोमरस (इन्द्राय सुन्विरे) इन्द्रके लिये तैयार हो रहे हैं। तुम्हारे लिये ही हो रहे हैं। (तान् मदाय पीतये) आनन्दके लिये उनको पीनेके लिये (ओकः हरिभ्यां आ याहि) यज्ञ स्थानपर घोडोंसे आओ ॥ ४ ॥

[२७०] (श्रुत्कर्णः वसूनां ईयते) प्रार्थना सुननेके लिये तत्पर कर्णवाला इन्द्र है, उसके पास हम धनोंकी प्रार्थना करते हैं। (नः गिरः श्रवत्) वह हमारी प्रार्थना सुने। (नु चित् मर्धिषत्) कदापि हमें हिंसित न करे, हमारी प्रार्थना निष्फल न करे ! (सद्यः चित् यः शता सहस्राणि ददत्) तत्काल ही वह सैंकडों और हजारोंकी संख्यामें धनोंको देता है। (दित्सन्तं न किः आ मिनत्) देनेकी इच्छा करनेवाले उसको कोई रोक नहीं सकते ॥ ५ ॥

[२७१] हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (ते यः गभीरा सवनानि सुनोति) तुम्हारे लिये ये गम्भीर सोमके सवन जो करता है (आ धावति च) और तुम्हारे लिये शीघ्रता करता है (सः वीरः इन्द्रेण) वह वीर इन्द्रके द्वारा (अप्रतिष्कुतः) विरुद्ध भावसे प्रतिरोधित न होता हुआ (नृभिः शुशुवे) मानवोंके द्वारा संसेवित होता है। संमानित होता है ॥ ६ ॥

[२७२] हे (मघवन्) धनपते ! (मघोनां वरूथं भव) धनवान् दाताओंका कवच जैसा संरक्षक बनो। (यत् शर्धतः समजासि) स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका निवारण करो। (त्वाहतस्य वेदनं विभजेमहि) तुम्हारे द्वारा मारे गये शत्रुके धनका हम सब बंटवारा करेंगे। (दुर्नशः गयं आभर) जिसका नाश नहीं होता ऐसा तुम हमें धन दो ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! दहीसे मिश्रित ये सोमरस तेरे लिए तैय्यार किए जा रहे हैं। तू इन रसोंको पीनेके लिए हमारे पास आ ॥ ४ ॥

यह इन्द्र या ऐश्वर्यशाली प्रभु प्रार्थना सुननेके लिए सदा तत्पर रहता है, आवश्यकता है केवल हृदयसे प्रार्थना करनेकी। हृदयसे प्रार्थना किए जानेपर वह अवश्य सुनता है। वह ऐसी प्रार्थनाको कभी निष्फल नहीं करता। जब वह अपने उपासककी इच्छा पूर्ण करनेके लिए तैय्यार रहता है, तब उसे कोई रोक नहीं सकता ॥ ५ ॥

जो सच्चे हृदयसे प्रभुकी उपासना करता है, वह प्रभुके विरोधमें या प्रतिकूल कभी नहीं जाता अपितु उसके द्वारा संवर्धित होकर मनुष्योंके द्वारा संमानित भी होता है ॥ ६ ॥

हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! तू दाताओंकी कवचके समान रक्षा कर तथा उनके साथ जो शत्रुता करते हों, उनका तू नाश कर, तथा हमको तू अक्षय धन प्रदान कर ॥ ७ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२७३ सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित् पृणन्नित् पृणते मयः ॥ ८ ॥
२७४ मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे ।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे ॥ ९ ॥
२७५ नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् ।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत् स गोमति व्रजे ॥ १० ॥
२७६ गमद् वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [२७३] (वज्रिणे सोमपाव्ने इन्द्राय सोमं सुनोत) वज्रधारी सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिये सोमरस निकालो। (अवसे पक्तीः पचत) अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्रके प्रीतिके लिए पुरोडाशादि अन्न पकाओ (कृणुध्वं इत्) इन्द्रके लिये ये सब कर्म करो। (मयः पृणन् इत् पृणते) इन्द्र सुख देता हुआ इस यज्ञकर्मको पूर्ण संपन्न करता है ॥ ८ ॥

[२७४] (सोमिनः मा स्रेधत) सोमयागसे पीछे न हटो। (दक्षत) दक्षतासे कर्म करते रहो। (महे आतुजे) बडे तथा शत्रुके विनाशक इन्द्रके लिये तथा (राये कृणुध्वं) धन प्राप्तिके लिये यज्ञ करो। (तरणिः इत् जयति) त्वरासे कर्म करनेवाला निःसंदेह विजय करता है, (क्षेति पुष्यति) वह अपने घरमें निवास करता है, पुष्ट होता है, (कवत्नवे देवासः न) कुत्सित कर्म करनेवालेके सहायक देव नहीं होते ॥ ९ ॥

[२७५] (सुदासः रथं नकिः परि आस) उत्तम दाताके रथको कोई दूर नहीं रख सकता। (न रीरमत्) न उसको अन्यत्र रममाण कर सकता है। (यस्य रक्षिता इन्द्रः) जिसका रक्षक इन्द्र है और (यस्य मरुतः) जिसके रक्षक मरुत् हैं (सः गोमति व्रजे गमत्) वह गौओंवाले वाडेमें जाता है, उसके पास गौओंके झुण्ड होते हैं ॥ १० ॥

[२७६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं यस्य अविता भुवः) तुम जिसके रक्षक होंगे, वह (मर्तः वाजयन् वाजं गमत्) मनुष्य तुम्हारा यश गाता हुआ अन्नको प्राप्त करता है। हे (शूर) शूर ! (अस्माकं रथानां अविता बोधि) हमारे रथोंका रक्षक बनो। और (अस्माकं नृणां च) हमारे पुत्रपौत्रादिकोंका रक्षक होओ ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! वज्र धारण करनेवाले तथा सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिए सोमरस तैयार करो। इन्द्रको प्रसन्न करके उससे अपनी सुरक्षा करवानेके लिए उसका सत्कार करो। ऐसा करनेसे इन्द्र सुख देता हुआ हर श्रेष्ठ कर्मको पूर्ण सम्पन्न करता है ॥ ८ ॥

मनुष्य श्रेष्ठ कर्म करनेसे स्वयं भी पीछे न हटे और न दूसरोंको विमुख करें। शत्रुनाशी वीरकी तन, मन और धनसे सहायता करे। जो शीघ्रतासे पर उत्तम रीतिसे कर्म करता है, वही सर्वत्र विजय प्राप्त करता है और अपने घरमें आनंदसे रहता है। ऐसे मनुष्यकी देव भी सहायता करते हैं। इसके विपरीत कुत्सित कर्म करनेवालेकी सहायता देव कभी नहीं करते ॥ ९ ॥

उत्तम दाता या एक उत्तम दासके समान प्रभुकी सेवा करनेवालेकी गति सर्वत्र होती है। उसकी गतिको कोई रोक नहीं सकता। ऐसे मनुष्यके रक्षक इन्द्र और मरुत् होते हैं, इसलिए वह हर तरहके ऐश्वर्यसे युक्त होता है ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तू जिसका रक्षक होता है, वह तेरी कृपासे समृद्धि पाकर तेरा यश सर्वत्र गाता है। हे शूरवीर इन्द्र ! तू हमारे रथोंका रक्षक बन और हमारे पुत्रपौत्रादिकोंकी भी रक्षा कर ॥ ११ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२७७ उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युर्षः ।
य इन्द्रो हरिवान् न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ १२ ॥
२७८ मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ १३ ॥
२७९ कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत् ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥ १४ ॥
२८० मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥ १५ ॥

अर्थ— [२७७] (यस्य अंशः रिच्यते) जिस इन्द्रका सोमरसका भाग अन्योंकी अपेक्षा अधिक होता है, (जिग्युषः धनं न) विजयी वीरके धनके समान (उत् इत् नु) निःसंदेह (यः हरिवान् इन्द्रः सोमिनि दक्षं दधाति) जो घोडोंवाला इन्द्र सोमयाग करनेवालेमें बल धारण करता है (तं रिपः न दभन्ति) उसको शत्रु नहीं दबाते ॥ १२ ॥

[२७८] (अखर्वं सुधितं सुपेशसं मंत्रं) बडा उत्तम बनाया सुन्दर मंत्रोंका स्तोत्र (यज्ञियेषु आदधात) यज्ञके योग्य देवोंमें इंद्रके लिये ही अर्पण करो । (यः कर्मणा इंद्रे भुवत्) जो अपने स्तोत्रगानरूप कर्मसे इन्द्रके मनमें स्थान पाता है, (तं पूर्वीः प्रसितयः न तरंति चन) उसको कोई बंधन कष्ट नहीं देते ॥ १३ ॥

[२७९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मर्त्यः) जो मनुष्य तुम्हारा प्रिय होता है (तं त्वा-वसुं कः आ दधर्षति) उस तुम्हारे भक्तको कौन भय दिखा सकता है ? हे (मघवन्) धनपते ! (ते इत् श्रद्धा) तुम्हारे ऊपर जो श्रद्धा रखता है वह (वाजी) बलवान् होता है, (पार्ये दिवि वाजं सिषासति) और पार होनेके दिनमें भी धन प्राप्त करता है ॥ १४ ॥

[२८०] (मघोनः ते ये प्रिया वसु ददति) तुम जैसे धनीको जो प्रिय धन अर्पण करते हैं, उनको (वृत्र हत्येषु चोदय) वृत्रवधके समय उत्साहित करो । हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंवाले इन्द्र ! (तव प्रणीती) तुम्हारी नीतिके द्वारा (सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम) ज्ञानियोंके साथ रहकर सब पापोंसे हम पार हो जायेंगे ॥ १५ ॥

भावार्थ— सोमयागमें इन्द्रको सोमरसका भाग अधिक दिया जाता है । जिस तरह विजयी वीरको धन अधिक मिलता है, उसी तरह इस विजयी इन्द्रको सोमरस अधिक मिलता है । ये वीर इन्द्र सोमयज्ञ करनेवालेको बल प्रदान करता है, उस बलके कारण उसके सभी शत्रु परास्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥

इन्द्र सभी देवोंमें प्रमुख है । वह देवोंका राजा है, इसलिए वह सभी तरहकी स्तुतियोंके योग्य है । जो अपनी उपासनाके द्वारा इन्द्रके मनमें अपना स्थान बना लेता है, उसे किसी तरहके बंधन कष्ट नहीं देते ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! जो तेरा प्रिय भक्त होता है, उसे भला कौन भय दिखा सकता है अर्थात् इन्द्रका भक्त हर तरहसे निर्भीक होता है । जो तुझपर श्रद्धा रखता है, वह बलवान् होता है और संकटके क्षणोंमें भी ऐश्वर्यशाली बना रहता है ॥ १४ ॥

जो इन्द्रकी उपासना करता है वह शत्रुनाशके लिए किए जानेवाले युद्धमें सदा उत्साहपूर्ण रहता है । उत्तम धर्म नियमोंमें रहनेसे सब पाप दूर हो सकते हैं । ज्ञानियोंके साथ रहनेसे तो निस्सन्देह पापसे बचा जा सकता है ॥ १५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२८१ तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥ १६ ॥

२८२ त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः ।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवो ऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥ १७ ॥

२८३ यदिन्द्र यावतस्त्व मेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥ १८ ॥

२८४ शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥ १९ ॥

अर्थ— [२८१] हे (इन्द्र) इंद्र ! (अवमं वसु तव इत्) पृथिवीपरका धन तुम्हारा ही है, (त्वं मध्यमं पुष्यसि) तू मध्यम धनको पुष्ट करता है । (विश्वस्य परमस्य राजसि) सब श्रेष्ठ धनपर भी तुम्हारा राज्य है यह (सत्रा) सत्य है । (त्वा गोषु न किः वृण्वते) तुम्हें गौओंमें रहनेसे कोई रोक नहीं सकता ॥ १६ ॥

[२८२] (त्वं विश्वस्य धनदा श्रुतः असि) तुम सब धनोंके दाता प्रसिद्ध हो । (ये आजयः ईं भवन्ति) जो युद्ध होते हैं उनमें भी तुम प्रसिद्ध हो । हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रशंसित वीर ! (अयं विश्वः पार्थिवः) ये सब पृथ्वीपरके मनुष्य (अवस्युः नाम भिक्षते) अपनी सुरक्षाके लिये तुम्हारी ही प्रार्थना करते हैं ॥ १७ ॥

[२८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् यावतः त्वं) जितने धनका स्वामी तू है (एतावत् अहं ईशीय) उतना सब धन मैं प्राप्त करना चाहता हूं । हे (रदावसो) धनके दाता ! (स्तोतारं इत् दिधिषेय) स्तोताकी सुरक्षा हो ऐसी मेरी इच्छा है । (पापत्वाय न रासीय) पाप बढानेके लिये धनका दान मैं नहीं करूंगा ॥ १८ ॥

[२८४] (कुहचिद्विदे महयते) कहींपर भी रहनेवाले उपासना करनेवाले भक्तके लिये (दिवे दिवे रायः शिक्षेयं इत्) प्रतिदिन मैं धनका दान अवश्य करूंगा । हे (मघवन्) धनपते ! (नः आप्यं त्वत् अन्यत् नहि) तुमसे भिन्न हमारा कोई बंधु नहीं है । (वस्यः पिता चन अस्ति) न प्रशंसनीय पिता ही दूसरा है ॥ १९ ॥

भावार्थ— यह सत्य है कि इस पृथ्वीपर, अन्तरिक्षमें और द्युलोकमें जितना भी कुछ ऐश्वर्य भरा पडा है, वह सब प्रभुका है । प्रभु ही उन सबका एकमात्र स्वामी है ॥ १६ ॥

वह प्रभु इतने बडे ऐश्वर्यका स्वामी होनेपर भी महान् दाता है । वह धनके दाताके रूपमें बहुत प्रसिद्ध है । युद्धोंमें भी या शत्रुनाशनके कार्यमें भी वह महायशस्वी है, इसलिए अपनी सुरक्षाके लिए सभी प्राणी उसी प्रभुकी शरणमें जाते हैं ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! जितने धनका स्वामी तू है, उतने ही विस्तृत धनका स्वामी मैं भी होऊं । मैं धनका स्वामी होकर स्तोताकी रक्षा करूं । मैं पाप बढानेके कामोंमें कभी भी अपना धन खर्च न करूं ॥ १८ ॥

इन्द्र कहता है- 'मैं प्रतिदिन उपासकको धन देता हूं,' यह सुनकर ऋषि कहता है- हे धनपते ! तुझसे भिन्न या तेरे सिवाय हमारा बन्धु और कोई नहीं है और नाही कोई दूसरा पिता है । तू ही हमारा पिता, भाई और पिता अर्थात् सर्वस्व है ॥ १९ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२८५ तरणिरित् सिषासति वाजं पुरंध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥ २० ॥

२८६ न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत् पार्ये दिवि ॥ २१ ॥

२८७ अभि त्वा शूर नोनुमो ऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृश मीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ २२ ॥

२८८ न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २३ ॥

अर्थ— [२८५] (तरणिः इत्) त्वरासे कर्म करनेवाला मनुष्य (पुरंध्या युजा वाजं सिषासति) बडी धारणावती बुद्धिके साथ युक्त होकर बल तथा अन्न प्राप्त करता है। (सुद्रुवं नेमिं त्वष्टा इव) उत्तम लकडीकी चक्रनेमिको तर्खाण नमाता है, उस तरह (गिरा वः पुरुहूतं इन्द्रं आ नमे) मैं अपनी स्तुतिसे आपके लिये बहुप्रशंसनीय इंद्रको मैं अपनी ओर आनेके लिये नवाता हूं ॥ २० ॥

[२८६] (मर्त्यः दुष्टुती वसु न विन्दते) मनुष्य बुरे स्तोत्रसे धन नहीं प्राप्त कर सकता। (स्रेधन्तं रयिः न नशत्) हिंसकको धन नहीं प्राप्त हो सकता। हे (मघवन्) धनपते ! (पार्ये दिवि) दुःखसे पार होनेके प्रयत्नसे युक्त दिनमें (मावते देष्णं) मेरे जैसे भक्तके लिये देनेयोग्य धन (तुभ्यं सुशक्तिः इत् विन्दते) तुमसे उत्तम शक्तिसे उत्तम कर्म करनेवाला ही प्राप्त करता है ॥ २१ ॥

[२८७] हे (शूर) शूर इंद्र ! (अस्य जगतः ईशानं) इस जंगम वस्तुजातके स्वामी तथा (तस्थुषः ईशानं) स्थावर विश्वके स्वामी ऐसे (स्वर्दृशं त्वा) दिव्यदृष्टिवाले तुमको (अदुग्धाः इव धेनवः) न दुही हुई गौवें जिस तरह दोहन होनेके लिये उत्सुक होती हैं उस तरह हम (अभि नो नुमः) स्तवन करते हैं ॥ २२ ॥

[२८८] हे (मघवन् इंद्र) धनपते इंद्र ! (दिव्यः त्वावान् अन्यः न) द्युलोकमें तुम्हारे सदृश दूसरा कोई नहीं है। (न पार्थिवः जातः न जनिष्यते) पृथिवीपर भी न कोई तुम्हारे सदृश हुआ है और ना ही होगा। (अश्वायन्तः गव्यन्तः वाजिनः) हम घोडों, गौओं और अन्नोंको चाहनेवाले (त्वा हवामहे) तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थ— कुशलतासे और शीघ्रतासे उत्तम काम करनेवाला शिल्पी उत्तम बुद्धिसे युक्त होनेके कारण अन्न और बलको प्राप्त करता है। वक्ता या उपदेशक अपनी वाणीके द्वारा लोगोंका मन आकृष्ट करके अन्न और बल प्राप्त करता है। वाणीमें ऐसी शक्ति चाहिए कि जिससे दूसरोंपर प्रभाव पडे ॥ २० ॥

मनुष्य बुरे स्तोत्रसे धन प्राप्त न करे अर्थात् वह धन प्राप्त करनेके लिए दुष्टकी प्रशंसा न करे और हिंसा करके भी धन न कमावे। मनुष्य प्रथम कुशलतासे कर्म करनेकी शक्ति प्राप्त करे फिर उस कुशलतापूर्ण कर्मसे मनुष्य धन प्राप्त करे ॥ २१ ॥

जो स्थावर और जंगमका एकमात्र प्रभु है, उसीकी उपासना करना मनुष्योंके लिए योग्य है। मनुष्य उतनी ही आतुरतासे ईश्वरस्तुति करे जितनी न दुही गायें दोहन करानेके लिए उत्सुक रहती हैं ॥ २२ ॥

हे प्रभो ! द्युलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा पृथिवीपर तेरे समान समर्थ वीर कोई दूसरा न भूतकालमें हुआ, न भविष्यकालमें होगा और न इस समय है। तीनों लोकोंमें और तीनों कालोंमें तेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है। इसलिए ऐश्वर्यको चाहनेवाले सभी लोग तेरे पास ही जाते हैं ॥ २३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२८९ अभी षुतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्यः ॥ २४ ॥

२९० परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥ २५ ॥

२९१ इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ २६ ॥

२९२ मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपो ऽति शूर तरामसि ॥ २७ ॥

अर्थ— [२८९] हे (ज्यायः इंद्र) श्रेष्ठ इंद्र ! (कनीयसः सतः तत् अभि आ भर) मैं तुम्हारा छोटा भाई हूं अतः मुझे वह धन तुम भरपूर दो। हे (मघवन्) धनपते ! (सनात् पुरुवसुः हि असि) तुम सनातन कालसे बहुत धनवाला हो और (भरे भरे हव्यः च) प्रत्येक युद्धमें तथा यज्ञमें पूज्य हो ॥ २४ ॥

[२९०] हे (मघवन्) धनपते ! (अमित्रान् परा नुदस्व) शत्रुओंको दूर कर। (नः वसु सुवेदा कृधि) हमारे लिये धन सुखसे प्राप्त होने योग्य कर। (महाधने सखीनां अविता बोधि) युद्धके समय मित्रोंका संरक्षण करनेवाला हो, (वृधः भव) धनको बढानेवाला हो ॥ २५ ॥

[२९१] हे (इन्द्र) इंद्र ! (नः क्रतुं आ भर) हमारे प्रज्ञानपूर्वक किये कर्मोंको पूर्ण करो। (यथा पिता पुत्रेभ्यः) जैसा पिता पुत्रोंको धन देता है वैसा तुम (नः शिक्ष) हमें दो। हे (पुरुहूत) बहुतोंद्वारा स्तवित हुए इंद्र ! (अस्मिन् यामनि) इस यज्ञमें (जीवाः ज्योतिः अशीमहि) हम जीवित रहकर तेजको प्राप्त करें ॥ २६ ॥

[२९२] (अज्ञाताः अशिवासः दुराध्यः वृजनाः नः मा मा अवक्रमुः) अज्ञात रीतिसे अशुभ दुष्ट घातक शत्रु हमपर आक्रमण न करें। हे (शूर) शूर ! (त्वया वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अति तरामसि) तुम्हारेसे हम स्वसंरक्षणमें समर्थ होकर सब कर्मोंसे हम पार हो जायेंगे ॥ २७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! मैं तेरा छोटा भाई हूँ, इसलिए तू मुझे भरपूर धन दे। बडा भाई छोटे भाईको धन दे। उसकी सहायता करे। उसका भाग योग्य समय आनेपर स्वयं दे डाले। बडे भाईके पास पैतृक धन पहले जाता है। इसलिए बडे भाईको चाहिए कि वह ईमानदारीसे अपने छोटे भाईका धन उसे दे दे ॥ २४ ॥

शत्रुओंको दूर करके ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि जिससे धनप्राप्तिके व्यवहार सुखसे होते रहें। युद्धके समय मित्रोंकी रक्षा हो, मित्रोंकी समृद्धि हो, इस प्रकार मित्रोंकी शक्ति बढे ॥ २५ ॥

पिता अपने पुत्रोंको सुशिक्षा दे, उनकी प्रज्ञा बढावे। उनमें कर्मकी कुशलतासे करनेकी शक्ति प्रदान करे। मनुष्य दीर्घजीवी हो, उसका जीवन तेजस्वी हो ॥ २६ ॥

कोई भी शत्रु अज्ञातमार्गसे हमपर आक्रमण न कर सके। हमारे कल्याणके मार्गमें बाधक न हो सके। हम सामर्थ्यवान् होकर सदा अपनी उन्नतिके लिए शुभ कर्मोंको करते रहें। उन शुभ कर्मोंको हम निर्विघ्न रूपसे करते रहें ॥ २७ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[३३]

(ऋषिः- (१-९) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, १०-१४ वसिष्ठपुत्राः। देवता- १-९ वसिष्ठपुत्राः इन्द्रो वा; १०-१४ वसिष्ठः। छन्दः- त्रिष्टुप्।)

२९३ श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः।
उत्तिष्ठन् वोचे परि बर्हिषो नॄन् न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥ १ ॥

२९४ दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम्।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात् सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान् ॥ २ ॥

२९५ एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारे- वेन्नु कं भेदमेभिर्जघान।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥ ३ ॥

२९६ जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणा- मक्षमव्ययं न किला रिषाथ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणे- न्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥ ४ ॥

---

[३३]

अर्थ— [२९३] इंद्र कहता है— (श्वित्यञ्चः धियंजिन्वासः) गौरवर्ण बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाले (दक्षिणतस्कपर्दाः) दक्षिणकी ओर शिखा रखनेवाले वसिष्ठ गोत्रके लोग (मा अभि प्रमन्दुः हि) मुझे अत्यन्त आनन्द देते रहे। (बर्हिषः परि उत्तिष्ठन् नॄन् वोचे) आसनसे ऊपर उठते हुए लोगोंसे मैंने कहा कि (मे दूरात् वसिष्ठाः अवितवे न) मुझसे दूर वसिष्ठके लोग न जांय ॥ १ ॥

[२९४] वसिष्ठ कहता है— (वैशन्तं पान्तं उग्रं इंद्रं) चमसमें स्थित सोमको पीनेवाले उग्र वीर इंद्रको (सुतेन अति तिरः) इस सोमरससे उस पानका तिरस्कार करवा के (दूरात् आनयन्) दूरसे भी ले आये थे। (इंद्रः वायतस्य पाशद्युम्नस्य सुतात् सोमात्) इंद्रने भी वयत् पुत्र पाशद्युम्नके तयार हुए सोमको छोडकर (वसिष्ठान् अवृणीत) वसिष्ठोंको ही वर लिया ॥ २ ॥

[२९५] (एव इत् नु एभिः सिन्धुं कं ततार) इसी तरह इन्होंने सिन्धुको सुखसे पार किया। (एव इत् नु एभि भेदं कं जघान) इसी तरह इन्होंने भेदका नाश सुखसे किया, आपसकी फूटको दूर किया। (एव इत् नु दाशराज्ञे सुदासं) इसी तरह दाशराज्ञ युद्धमें सुदासको हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठो! (वः ब्रह्मणा इन्द्रः प्रावत्) आपके स्तोत्रसे ही इन्द्रने सुरक्षित किया ॥ ३ ॥

[२९६] हे (नरः) नेता लोगो! (वः ब्रह्मणा पितॄणां जुष्टी) आपके स्तोत्रसे पितरोंकी प्रीति होती है। (अक्षं अव्ययं) मैंने अपने रथके अक्षको चलाया है। मैं रथ अपने स्थानको जानेके लिये चलाता हूं। (न किल रिषाथ) तुम क्षीण न होओ। बलवान् बनो। हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठ लोगो! (यत् शक्वरीषु बृहता रवेण) शक्वरी ऋचाओंमें बडे आलापोंके स्वरसे, सामगानसे (इन्द्रे शुष्मं अदधात) इन्द्रमें बल धारण करो, बल बढाओ। इन्द्रका यश बढाओ ॥ ४ ॥

भावार्थ —इस मन्त्रमें आर्योंका वर्णन प्रतीत होता है- वे आर्य गौरवर्णके, बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवाले, दक्षिणकी ओर शिखा रखनेवाले तथा लोगोंको निवास करानेवाले होते थे। वे हमेशा अपने पूज्य देव इन्द्रकी ही भक्ति करते थे। इन्द्र भी यही चाहता था कि ये आर्य उसकी भक्तिसे कभी दूर न जायें ॥ १ ॥

इन्द्र आर्योंका देव है। इसलिए आर्य इसी देवका सदा सत्कार करते थे। कभी कभी आर्येतर लोग भी इस इन्द्रका सत्कार करनेकी कोशिश करते तो आर्य उसे अपना सत्कार ही स्वीकार करनेकी प्रेरणा देते थे ॥ २ ॥

इन्द्रने सिन्धुको सुखसे पार करने योग्य बनाया। आपसकी फूटको दूर किया और अपने अनुयायियोंको अच्छी तरह संघटित किया। दाशराज्ञ युद्धमें सुदासकी रक्षा की। इन सब कामोंके लिए ऋषियोंने अपने स्तोत्रोंसे उसे प्रेरणा दी ॥ ३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२८९ अभी षुतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन् त्सनादसि भरेभरे च हव्यः ॥ २४ ॥

२९० परा णुदस्व मघवन्नमित्रान् त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥ २५ ॥

२९१ इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ २६ ॥

२९२ मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपो ऽति शूर तरामसि ॥ २७ ॥

अर्थ— [२८९] हे (ज्यायः इंद्र) श्रेष्ठ इंद्र ! (कनीयसः सतः तत् अभि आ भर) मैं तुम्हारा छोटा भाई हूं अतः मुझे वह धन तुम भरपूर दो। हे (मघवन्) धनपते ! (सनात् पुरुवसुः हि असि) तुम सनातन कालसे बहुत धनवाला हो और (भरे भरे हव्यः च) प्रत्येक युद्धमें तथा यज्ञमें पूज्य हो ॥ २४ ॥

[२९०] हे (मघवन्) धनपते ! (अमित्रान् परा नुदस्व) शत्रुओंको दूर कर। (नः वसु सुवेदा कृधि) हमारे लिये धन सुखसे प्राप्त होने योग्य कर। (महाधने सखीनां अविता बोधि) युद्धके समय मित्रोंका संरक्षण करनेवाला हो, (वृधः भव) धनको बढानेवाला हों ॥ २५ ॥

[२९१] हे (इन्द्र) इंद्र ! (नः क्रतुं आ भर) हमारे प्रज्ञानपूर्वक किये कर्मोंको पूर्ण करो। (यथा पिता पुत्रेभ्यः) जैसा पिता पुत्रोंको धन देता है वैसा तुम (नः शिक्ष) हमें दो। हे (पुरुहूत) बहुतोंद्वारा स्तवित हुए इंद्र ! (अस्मिन् यामनि) इस यज्ञमें (जीवाः ज्योतिः अशीमहि) हम जीवित रहकर तेजको प्राप्त करें ॥ २६ ॥

[२९२] (अज्ञाताः अशिवासः दुराध्यः वृजनाः नः मा मा अवक्रमुः) अज्ञात रीतिसे अशुभ दुष्ट घातक शत्रु हमपर आक्रमण न करें। हे (शूर) शूर ! (त्वया वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अति तरामसि) तुम्हारेसे हम स्वसंरक्षणमें समर्थ होकर सब कर्मोंसे हम पार हो जायगे ॥ २७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! मैं तेरा छोटा भाई हूँ, इसलिए तू मुझे भरपूर धन दे। बडा भाई छोटे भाईको धन दे। उसकी सहायता करे। उसका भाग योग्य समय आनेपर स्वयं दे डाले। बडे भाईके पास पैतृक धन पहले आता है। इसलिए बडे भाईको चाहिए कि वह ईमानदारीसे अपने छोटे भाईका धन उसे दे दे ॥ २४ ॥

शत्रुओंको दूर करके ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि जिससे धनप्राप्तिके व्यवहार सुखसे होते रहें। युद्धके समय मित्रोंकी रक्षा हो, मित्रोंकी समृद्धि हो, इस प्रकार मित्रोंकी शक्ति बढे ॥ २५ ॥

पिता अपने पुत्रोंको सुशिक्षा दे, उनकी प्रज्ञा बढावे। उनमें कर्मको कुशलतासे करनेकी शक्ति प्रदान करे। मनुष्य दीर्घजीवी हो, उसका जीवन तेजस्वी हो ॥ २६ ॥

कोई भी शत्रु अज्ञातमार्गसे हमपर आक्रमण न कर सके। हमारे कल्याणके मार्गमें बाधक न हो सके। हम सामर्थ्यवान् होकर सदा अपनी उन्नतिके लिए शुभ कर्मोंको करते रहें। उन शुभ कर्मोंको हम निर्विघ्न रूपसे करते रहें ॥ २७ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[३३]

(ऋषिः- (१-९) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, १०-१४ वसिष्ठपुत्राः । देवता- १-९ वसिष्ठपुत्राः इन्द्रो वा; १०-१४ वसिष्ठः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२९३ श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन् वोचे परि बर्हिषो नॄन् न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥ १ ॥
२९४ दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात् सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान् ॥ २ ॥
२९५ एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारे-वेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥ ३ ॥
२९६ जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणा-मक्षमव्ययं न किला रिषाथ ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणे-न्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥ ४ ॥

---

[३३]

अर्थ— [२९३] इंद्र कहता है— (श्वित्यञ्चः धियंजिन्वासः) गौरवर्ण बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाले (दक्षिणतस्कपर्दाः) दक्षिणकी ओर शिखा रखनेवाले वसिष्ठ गोत्रके लोग (मा अभि प्रमन्दुः हि) मुझे अत्यन्त आनन्द देते रहे । (बर्हिषः परि उत्तिष्ठन् नॄन् वोचे) आसनसे ऊपर उठते हुए लोगोंसे मैंने कहा कि (मे दूरात् वसिष्ठाः अवितवे न) मुझसे दूर वसिष्ठके लोग न जांय ॥ १ ॥

[२९४] वसिष्ठ कहता है— (वैशन्तं पान्तं उग्रं इंद्रं) चमसमें स्थित सोमको पीनेवाले उग्र वीर इंद्रको (सुतेन अति तिरः) इस सोमरससे उस पानका तिरस्कार करवा के (दूरात् आनयन्) दूरसे भी ले आये थे । (इंद्रः वायतस्य पाशद्युम्नस्य सुतात् सोमात्) इंद्रने भी वयत् पुत्र पाशद्युम्नके तयार हुए सोमको छोडकर (वसिष्ठान् अवृणीत) वसिष्ठोंको ही वर लिया ॥ २ ॥

[२९५] (एव इत् नु एभिः सिन्धुं कं ततार) इसी तरह इन्होंने सिन्धुको सुखसे पार किया । (एव इत् नु एभि भेदं कं जघान) इसी तरह इन्होंने भेदका नाश सुखसे किया, आपसकी फूटको दूर किया । (एव इत् नु दाशराज्ञे सुदासं) इसी तरह दाशराज्ञ युद्धमें सुदासको हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठो ! (वः ब्रह्मणा इन्द्रः प्रावत्) आपके स्तोत्रसे ही इन्द्रने सुरक्षित किया ॥ ३ ॥

[२९६] हे (नरः) नेता लोगो ! (वः ब्रह्मणा पितॄणां जुष्टी) आपके स्तोत्रसे पितरोंकी प्रीति होती है । (अक्षं अव्ययं) मैंने अपने रथके अक्षको चलाया है । मैं रथ अपने स्थानको जानेके लिये चलाता हूं । (न किल रिषाथ) तुम क्षीण न होओ । बलवान् बनो । हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठ लोगो ! (यत् शक्वरीषु बृहता रवेण) शक्वरी ऋचाओंमें बडे आलापोंके स्वरसे, सामगानसे (इन्द्रे शुष्मं अदधात) इन्द्रमें बल धारण करो, बल बढाओ । इन्द्रका यश बढाओ ॥ ४ ॥

भावार्थ —इस मंत्रमें आर्योंका वर्णन प्रतीत होता है- वे आर्य गौरवर्णके, बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवाले, दक्षिणकी ओर शिखा रखनेवाले तथा लोगोंको निवास करानेवाले होते थे । वे हमेशा अपने पूज्य देव इन्द्रकी ही भक्ति करते थे । इन्द्र भी यही चाहता था कि ये आर्य उसकी भक्तिसे कभी दूर न जायें ॥ १ ॥

इन्द्र आर्योंका देव है । इसलिए आर्य इसी देवका सदा सत्कार करते थे । कभी कभी आर्येतर लोग भी इस इन्द्रका सत्कार करनेकी कोशिश करते तो आर्य उसे अपना सत्कार ही स्वीकार करनेकी प्रेरणा देते थे ॥ २ ॥

इन्द्रने सिन्धुको सुखसे पार करने योग्य बनाया । आपसकी फूटको दूर किया और अपने अनुयायियोंको अच्छी तरह संघटित किया । दाशराज्ञ युद्धमें सुदासकी रक्षा की । इन सब कामोंके लिए ऋषियोंने अपने स्तोत्रोंसे उसे प्रेरणा दी ॥ ३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२९७ उद् द्यामिवेत् तृष्णजो नाथितासो ऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ॥ ५ ॥
२९८ दण्डा इवेद् गोअजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६ ॥
२९९ त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत् ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥ ७ ॥
३०० सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥ ८ ॥

अर्थ— [२९७] (तृष्णजः वृतासः नाथितासः) तृषित घेरे हुए उन्नति चाहनेवाले वसिष्ठोंने (द्यां इव दाशराज्ञे) द्युलोकके समान दाशराज्ञ युद्धमें (उत् अदीधयुः) इन्द्रकी प्रशंसा गायी । (स्तुवतः वसिष्ठस्य इन्द्रः अश्रोत्) स्तुति करनेवाले वसिष्ठका स्तोत्र इन्द्रने सुना । और उसने (तृत्सुभ्यः उरुं लोकं अकृणोत्) तृत्सुओंके लिये विस्तृत प्रदेश करके दिया ॥ ५ ॥

[२९८] (गो अजनासः दण्डा इव) गौओंको चलानेवाले डंडोंके समान (भरताः परिच्छिन्नाः अर्भकासः आसन्) भरत लोग छोटे और अल्प थे । (तृत्सूनां पुर एता वसिष्ठः अभवत्) उन तृत्सुओं—भरतों—का वसिष्ठ पुरोहित हुआ (आत् इत् तृत्सूनां विशः अप्रथन्त) तबसे भरतोंकी प्रजा बढने लगी ॥ ६ ॥

[२९९] (भुवनेषु त्रयः रेतः कृण्वन्ति) भुवनोंमें तीन देव वीर्य निर्माण करते हैं । (ज्योतिरग्राः आर्याः तिस्रः प्रजाः) ज्योति जिनके सामने रहती है ऐसे आर्य तीन प्रकारकी प्रजारूप होते हैं । (त्रयः घर्मासः उषसं सचन्ते) ये तीन उष्णताएं उषाका सेवन करती हैं । (वसिष्ठाः तान् सर्वान् इत् अनु विदुः) वसिष्ठ इन सबको उत्तम रीतिसे जानते हैं ॥ ७ ॥

[३००] हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठ पुत्रो ! (एषां महिमा) आपकी महिमा (सूर्यस्य ज्योतिः इव वक्षथः) सूर्यके प्रकाशके समान फैली है और (समुद्रस्य इव गम्भीरः) समुद्रके समान गंभीर है । (वातस्यः प्रजवः इव) वायुके वेगके समान (वः स्तोमः) आपका स्तोम (अन्येन अनु-एतवे न) किसी अन्यके द्वारा अनुकरण करने योग्य नहीं है । आपकी ही यह विशेषता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे नेता मनुष्यों ! अपनी विद्वत्तासे ज्ञानियोंको तृप्त करो । वाहनादि चलानेमें कुशल होओ । कभी निर्बल मत होओ, तथा अपने काव्य आदियोंसे वीरोंका उत्साह बढाओ । पुत्रोंके द्वारा रचित काव्योंको सुनकर ज्ञानी प्रसन्न होते हैं ॥ ४ ॥

भूखे, प्यासे शत्रुओंसे घिरे हुए और अपनी उन्नति चाहनेवाले आतुर भक्तोंने प्रार्थना की तो प्रभुने उनकी प्रार्थनाओंको सुना । इस लिए भक्त अन्तःकरणसे प्रभुकी प्रार्थना करे ॥ ५ ॥

जिस तरह गायोंको हांकनेके लिए डण्डे छोटे छोटे होते हैं, उसी तरह भरण पोषण करनेवाले सज्जन भी अल्प ही होते हैं । समाज या राष्ट्रमें उदार जनोंकी संख्या अल्प ही होती है । अथवा भरत शक्तिहीन थे, पर जब उन्होंने वसिष्ठको अपना पुरोहित बनाया तो वसिष्ठके प्रयत्नोंसे भरत शक्तिशाली हो गए । जिस राष्ट्रका पुरोहित उत्तम होता है, वह राष्ट्र और उस राष्ट्रकी प्रजायें समृद्ध होती हैं ॥ ६ ॥

अग्नि, वायु और सूर्य ये तीन देव त्रिभुवनोंमें वीर्य अर्थात् शक्तिका निर्माण करते हैं । प्रकाशका मार्ग जिनके सामने हमेशा रहता है, ऐसी तीन प्रकारकी प्रजायें आर्य कहलाती हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन प्रकारकी आर्य प्रजाएं हैं । इनके सामने प्रकाशका मार्ग हमेशा रहता है । यही देवमार्ग है । तीन प्रकारकी अग्नि अर्थात् तीन यज्ञ उषःकालमें शुरू होते हैं । ज्ञानी इन सब बातोंको अच्छी तरह जानते हैं ॥ ७ ॥

हे ज्ञानी ऋषियो ! आपकी महिमा सूर्यप्रकाशके समान सर्वत्र फैली हुई है समुद्रके समान अपार है । जिस तरह वायुके वेगको कोई जान नहीं सकता, उसी तरह आपके ज्ञानकी थाह भी कोई नहीं पा सकता ॥ ८ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिकधर्म Regd. No. G. 11 Vaidic Dharma R. No. L1025/57

मुफ्त भेंट मुफ्त भेंट मुफ्त भेंट

आज ही इस योजना का लाभ उठाइए। इस योजनामें आपके द्वारा खरीदी गई पुस्तकोंके साथ अन्य पुस्तकें आपको संस्था की ओरसे मुफ्तमें भेंट रूपमें दी जाएंगी।

योजना – १ – (१) अथर्ववेदका सुबोध अनुवाद (पांच भागोंमें)
कीमत रु. ६०–०० (डाकव्यय अलग रहेगा)

इन पांचों भागोंको एक साथ खरीदनेवालेको संस्थाकी ओरसे–
(१) ऋग्वेदसंहिता – (मूलमात्र)
(२) यजुर्वेदसंहिता–(मूलमात्र) या (२) सामवेदसंहिता– (मूलमात्र)

ये दो पुस्तकें मुफ्तमें दी जाएंगी। अथर्व – अनुवादके पांचों भाग हिन्दी–मराठी – गुजराती इन तीनों भाषाओंमें उपलब्ध हैं।

योजना – २ –(१) गीतापुरुषार्थबोधिनी मूल्य रु. ३०–००
(२) सामवेदभाष्य मूल्य रु. १८–०० (डाकव्यय अलग)

इन दोनों ग्रंथोंको एक साथ खरीदनेवालेको संस्थाकी ओरसे—
ऋग्वेदसंहिता (मूलमात्र)

मुफ्तमें दी जाएगी। योजना–२ की पुस्तकें हिन्दी तथा मराठी भाषाओंमें उपलब्ध हैं।

योजना – ३– (१) अथर्ववेदका सुबोध अनुवाद —
(पांच भागोंमें) मूल्य ६०–००
(२) गीतापुरुषार्थबोधिनी मूल्य ३०–००
(३) चाणक्य सूत्राणि मूल्य १८–०० (डा. व्य. अलग)

इन तीनों पुस्तकोंको एक साथ खरीदनेवाले को संस्थाकी ओरसे—
(१) ऋग्वेदसंहिता (मूलमात्र)
(२) यजुर्वेदसंहिता (मूल) अथवा सामवेदसंहिता (मूल)
(३) पं. सातवलेकर—जीवनप्रदीप (हिन्दी)

ये पुस्तकें मुफ्तमें दी जाएंगी। योजना – ३ की सभी पुस्तकें हिन्दी और मराठी भाषाओंमें उपलब्ध हैं।

यह " मुफ्त भेंट योजना " दिसम्बर १९७२ तक ही रहेगी। अतः शीघ्रता करें और आज ही अपना ऑर्डर भेजें। ऑर्डर देते समय किस भाषामें पुस्तकें चाहिए इसका भी उल्लेख अवश्य करें। पुस्तकों के लिए आज ही लिखें।

व्यवस्थापक
स्वाध्याय मण्डल, पारडी
जि. बलसार (गुजरात)

मुद्रक और प्रकाशक– व. श्री. सातवलेकर, भारत मुद्रणालय, पोस्ट– ' स्वाध्याय मण्डल, पारडी ' [जि. बलसार]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu